एक हज़ार वर्ष बाद

लेखक

काका गाडगील

प्रकाशक

रणजीत प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स

चाँदनी चौक, देहली।

१९५१ } { मूल्य ३)

काका [illegible]

माननीय पंडित नरहर विष्णु गाडगील को हम लोग 'काका' कहते हैं। हमारे देश में अभी तक दो 'काका' हुए हैं। एक हैं कालेलकर जी और दूसरे हैं गाडगील महाशय। कालेलकर कदाचित् बड़े काका हैं, क्योंकि स्वयं पुण्य-श्लोक बापू उन्हे 'काका' कहा करते थे। गाडगील, समझ लीजिये, छोटे 'काका' हैं। पर हैं वे सर्व-स्वीकृत 'काका'। जहाँ तक मेरा अनुमान है, लौह पुरुष सरदार भी उन्हें 'काका' कहकर ही सम्बोधित करते हैं। गत तीन-चार वर्षों से मुझे काका को निकट से देखने का अवसर मिला है। उनका व्यक्तित्व सरल, आडम्बर-शून्य, अनहंकार-मय, कर्मठ, भावयुक्त एवं सहज है। वे बहुश्रुत एवं बहुपठित जन है। भारतीय राजनीति मे उनका स्थान ऊँचा है। वे परम देशभक्त हैं। देश के स्वातन्त्र्य-युद्ध में उन्होने बहुत बड़ा भाग लिया है। वे तपे हुए, अनुभवी, कष्ट सहिष्णु सेनानी हैं। वर्षों तक महाराष्ट्र प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सभापति रहकर उन्होने अपनी कर्म-कुशलता का परिचय दिया है। गत पन्द्रह-सोलह वर्षों से भारत की केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्य के रूप मे वे अपने गहन संसदीय ज्ञान का परिचय देते रहे हैं।

जब से दिल्ली आया हूँ---प्रायः भाड़ झोकने के लिए—तब से मुझे काका को सब ओर से देख सकने की सुविधा मिली। मैंने देखा कि काका न केवल राजनैतिक प्राणी ही हैं, वरन् वे एक अच्छे साहित्यकार भी हैं। वे विचारक हैं। वे सुलेखक है। वे शैलीयुक्त हैं। मुझे इधर काका के कुछ निबन्धो को पढ़ने का अवसर मिला है। मराठी भाषा में उनकी गणना उच्च कोटि के लेखको मे होती हैं। उनकी लेखनशैली

अत्यन्त परिपक्व, परिपुष्ट, मौलिक, पुरातन संदर्भयुक्त एव मर्म-स्पर्शिनी है।

इधर, इस पुस्तिका के रूप मे, उनके ये कुछ निबन्ध हिन्दी पाठकों के सम्मुख उपस्थित किये जा रहे हैं। मुझे इन निबन्धो में से एक निबन्ध के कथानक को स्वयं काका के मुख से, कथा के रूप मे, सुनने का अवसर मिला है। केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा का अधिवेशन हो रहा था। एक दिन मध्याह्न-अवकाश के समय मैं और काका दोनों भोजनगृह मे जा बैठे और काका कहने लगे—"वह कथानक जो इस पुस्तिका में "ग्यानू मरा नही ....." शीर्षक से लिपिबद्ध किया गया है।" मैं तन्मय होकर सुन रहा था। काका अपनी पवित्र, प्रवाह-युक्त, सुष्ठु मराठी में कहानी सुना रहे थे। और जब उन्होने ग्यानू के पिता रामजी बुवा के ये शब्द कहे कि "ग्यानू मरा नहीं है, वह बच्चा बन गया है।" तो मैं बच्चों के सदृश रो पड़ा और बोला, "काका, आज तुमने यह कथा सुनाकर मुझे कृतार्थ कर दिया।" मैं पाठको से कहूँगा कि वे काका साहब के इन निबन्धो को पढ़ें और ध्यानपूर्वक पढ़े। वे इन्हे पढ़कर कृतार्थ हो जायेंगे। उन्हें यह अनुभव होगा कि इन निबन्धो मे न केवल उच्च कोटि का साहित्य ही है, वरन् वे यह भी देख सकेंगे कि इन निबन्धो के लेखक तपस्तप्त, गहन अनुभूतिशील, कुशल, सामर्थ्यवान् एव लोकसंग्रही साहित्य-रथी हैं। एक-एक वाक्य मे गंभीर तत्त्वज्ञान को भर देने का उनमें अद्भुत् सामर्थ्य है। काका अपनी लेखनी के धनी हैं। उनकी इस पुस्तिका ने निःसन्देह हिन्दी साहित्य की भी वृद्धि की है। हिन्दी के निबन्ध साहित्य में यह पुस्तक अग्रगण्य होगी—ऐसा मेरा विश्वास है।

मैं काका के प्रति हिन्दी भाषा-भाषियो की ओर से, इस निबन्धावली को हिन्दी में रूपान्तरित करने के लिये, हार्दिक कृतज्ञता का प्रकाश करता हूँ। इन पंक्तियों को पढ़कर कोई भी पाठक यह न समझ ले कि मैं काका के प्रति जो ये शब्द कह रहा हूं वह उनके प्रति पक्षपात से वशीभूत होकर

कह रहा हूं। बन्धुवर डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल एम ए., पी. एच. डी., डी. लिट. को समग्र हिन्दी जगत् अन्यतम निबन्ध-लेखक के रूप में स्वीकार करता है। उन वासुदेव जी ने स्वय मुझसे काका के 'एक हज़ार वर्ष बाद' वाले निबन्ध की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी और कहा था कि ऐसी उच्च कोटि का साहित्यिक-निबन्ध उन्हे अन्यत्र पढ़ने को नहीं मिला। मुझे पूर्ण विश्वास हैं कि हिन्दी संसार इन निबन्धो का समुचित आदर करेगा और इन्हे पढकर सत्साहित्यानन्द का अनुभव करेगा।

५, विंड्सर प्लेस, नई दिल्ली
१३ नवम्बर, १९५०

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

परिचय

१६४४ के अगस्त मास में यरवदा जेल से मेरी रिहाई हुई। यरवदा जेल मे मैंने कुछ राजनैतिक सिद्धान्तो पर ग्रन्थो का लेखन किया। रिहाई के बाद कांग्रेस का काम करता रहा और जब अवसर मिलता था तब कुछ-न-कुछ घटनाओ को, जिनका अनुभव मैंने किया था, शब्दरूप में लाकर प्रकाशित किया। यह निबन्ध या लेख मैंने मराठी में लिखे थे और उनका संकलन 'साल गुदस्त' इस नाम से १६४६ मे प्रकाशित हुआ। मेरे कई मित्रो के कहने पर इन निबन्धो का हिन्दी मे अनुवाद करने का निश्चय किया और श्री रत्नपारखी विद्यालंकार की मदद से मैंने बहुत सारे निबन्धो का अनुवाद किया। यह सब लेख दिल्ली के हिन्दी 'हिन्दुस्तान' मे पिछले दो वर्षों मे छप चुके है। इन सब लेखो का सकलन करके यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। हिन्दी भाषा अब भारत की राजभाषा हो गयी है। अब तो सब भारतवासियो का यह कर्तव्य है कि इस राज-भाषा को प्रासादिक, अर्थवाही और विशाल बनावे। जो शैली इस ग्रन्थ मे है वह हो सकता है कि कुछ हिन्दी साहित्यिको को पसन्द न हो। मराठी जीवन का परिचय 'काव्यशास्त्र-विनोद' के वातावरण मे हिन्दी जगत को देने का यह प्रयत्न हैं। मैं आशा रखता हूँ कि जब कोई उदासीनता मन मे पैदा होती है और दिल दुखित होता है तो इस ग्रन्थ के किसी पन्ने को पढ़ने से मन उल्हासित होगा।

प्रबोधिनी एकादशी, कार्तिक
सवत् २००७, नई दिल्ली

न० वि० गाडगील

विषय-सूची

सोमनाथ मन्दिर

एक हज़ार वर्ष बाद

"समझे, क्या हो रहा है ?" मैने जो टेलिफोन कान पर लगाया तो सुपरिचित और प्रसन्न आवाज मे ये शब्द सुनाई पड़े। आजकल घर मे टेलीफोन होना घर मे गजान्त लक्ष्मी होने के समान है। युद्धकाल मे पैदाइश कम और माग ज्यादा होने की वजह से सर्वत्र नियत्रणो का राज्य हो गया था। ये नियन्त्रण चन्द वर्षों तक ही जिन्दे रहेगे ऐसा माना जाता था, किन्तु अनुभव तो यह हो रहा है कि ये नियन्त्रण, ये कट्रोल सप्त चिरजीवियो के समान चिरजीव होने वाले है। घर में टेलिफोन होना प्रतिष्ठा, सत्ता व सम्पत्ति का द्योतक रहा है। अब भी वही हालत है। और अगर वह टेलिफोन मुफ्त मे मिला हो तो कहना ही क्या ? इस पर भी अगर एक नही पाच हो, एक पर्सनल असिस्टेट का, एक पर्सनल सेक्रेटरी का, एक आम, एक दफ्तर का और एक खास खुफिया, जिसका नम्बर इने-गिने व्यक्तियो को ही मालूम हो, तो फिर बात ही क्या ! पहले जमाने मे पंचहजारी सरदार होते थे, उसी तरह मैं आज पंच टेलिफोनी मन्त्री हूं। किन्तु इन पाचो मे से एक का भी नम्बर मुझे निश्चित

रूप से याद नही, क्योकि मै समझता हू कि ऐसी छोटी-छोटी बातो को याद मे रखना मेरे पद की प्रतिष्ठा के लिए ठीक नही।

बात यह है कि उनमे से ही एक टेलिफोन पर ऊपर बताये हुए शब्दो को मैने सुना। इसके पहले रेडियो पर जूनागढ के बारे मे कोई महत्व का वक्तव्य होने वाला है, ऐसी खबर मिली थी। जूनागढ एक ऐसा सवाल था जिसके बारे मे जनता और सरकार दोनो मे बहुत चर्चा होती थी और रज भी। कुछ दिन पहले मैं पूना गया था और वहा की सार्वजनिक सभा मे कह चुका था कि 'जूनागढ़' जूना-गढ़ होने वाला है, यानी पुराना और इतिहासलुप्त हो जाने वाला है। जूनागढ़ मे जो कुछ होता था वह मुझे मालूम था। वहा की वास्तविक स्थिति क्या थी इससे मै परिचित था और किस तरह से वहाँ की घटनाओ मे परिवर्तन करना या करवाना था यह भी मुझे मालूम था। किन्तु प्रसव हमेशा सुलभ ही होता है, ऐसा नही। किसी मे देर लगती है, किसी मे बात बहुत जल्दी हो जाती है और किसी मे शस्त्रक्रिया करना ही उचित हो जाता है। उपर्युक्त शब्दो को सुनने के बाद 'नही' कहना बडा मुश्किल था और जो व्यक्ति उन शब्दो को कह रहा था वह असामान्य और परिचित था। मैने कहा "हा।" "क्या लगता है तुमको?" मुझसे पूछा गया। मैने कहा—"जो कुछ हुआ है वह बिलकुल ठीक है।" टेलिफोन बन्द हो गया।

रात के दस बज चुके थे। हिन्दुस्तान सरकार की नौकरी बारह घटे से ज्यादा करके मैने आराम का हक प्राप्त कर लिया था। मै गद्दी पर लेट गया, किन्तु जो सवाल-जवाब हुए थे उनको बार-बार याद करता रहा। सोचता रहा—"किस बारे मे यह सवाल था?" मन्त्रिमण्डल के सामने बहुत से अनिर्णीत प्रश्न थे, वे एक के बाद एक मन के सामने आने लगे। अन्त में यही निश्चय किया कि जब आवाज मे संतोष है और जब सरदार

खुशी मे मालूम होते है तो जरूर ही यह सवाल जूनागढ के बारे मे होगा। जूनागढ के बारे मे सरदार साहब के साथ सब से ज्यादा मै रहा यह बात सब जानते थे। "जूनागढ की समस्या हल हो गई, यही इसका मतलब है", इस विचार से मेरा मन प्रमुदित हुआ और उसी समाधान के वातावरण मे सब सुख और दुःख को खतम करने वाली निद्रा ने मुझे अपने अङ्क मे ले लिया।

दूसरे दिन मन्त्रिमण्डल के कमरे मे सरदार साहब मुझे मिले। मैंने उनको बधाई दी, क्योंकि उस समय तक जूनागढ के बारे मे सब बातें खुल चुकी थी। सब दुनिया उनको जान चुकी थी। जिस वक्त इस सवाल को हल करने की कोशिश हो रही थी उस समय कई लोग नाराज थे, कईयो के दिल सशय से भरे हुए थे, कईयो के हाथ कापते थे। जूनागढ ने नये राजकाल मे बहुत पेचीदा हालत पैदा कर दी थी। वैसे तो सवाल बहुत छोटा था, किन्तु समझ लीजिए कि वह थी तो लघुमूर्ति किन्तु बृहतकीर्ति हो चुकी थी। जूनागढ़ कुटिल षड्यन्त्र का क्षेत्र बना हुआ था। वह नीति का प्रयोग-क्षेत्र हो रहा था। बात यह थी कि जूनागढ़ मे जो विजय कमाता उसके लिए अन्य क्षेत्रो मे भी विजय निश्चित थी और वहां अपयश आने के माने थे हाथी के कान मे चींटी का जाना और उसकी मृत्यु होनी। काम तो नाजुक था किन्तु निश्चित क़दम उठाये बिना काम चलने वाला नही था। जूनागढ़ का सवाल इतना बडा, इतना महत्व का था कि मैं नही समझता कि उसका पूरा मूल्याकण अभी हो सकता है। वर्षों के बाद जब वर्तमान काल का इतिहास लिखा जायेगा और सब बातें, जो आज कोई लिख नही सकता और कह भी नही सकता, जब मालूम हो जायेंगी तब जो कुछ सरदार साहब ने किया वह ठीक प्रमाण से मालूम होगा।

महान् शिल्पकार, पटेल

एक बात निश्चित है—वह यह कि जिस महान् व्यक्ति ने जूनागढ के सवाल को हल किया, वहा की घटनाओ को रूप और आकार दिया, वह एक बडा शिल्पकार और एक दृढ़निश्चयी मूर्ति है। सरदार अल्प शब्द और प्रचड कृति के समन्वय है। भविष्य मे क्या होगा और कैसा होगा यह तो ऐसा समझिये कि वह प्रेरणा से ही जानते है। लम्बा-चौडा वक्तव्य देना या निबन्ध लिखना उनके स्वभाव के अनुकूल नही उनकी बुद्धि तर्क-प्रधान नही। महत्त्वपूर्ण निवेदन मे वह रस नही लेते। व्यवहार को वह जानते है और उनकी बुद्धि बिलकुल व्यवहारिक है।

मत्रिमंडल मे जब जब जूनागढ़ के सवाल पर चर्चा हुई मै सदा उनका विनीत साथी रहा, और इसलिए उनका अभिनन्दन करने का सबसे अधिक अधिकार मेरा था। मैंने उनको बधाई दे दी। उन्होंने अपनी आदत के अनुसार अपना बाया हाथ मु ह के ऊपर फिराया और अपनी खास हिंदी मे पूछा—"अब क्या करोगे ?" मै जानता था कि जो जवाब वह चाहते थे वही मैं दूँगा। इसका उन्हे भी पूरा यकीन था। आम तौर से उनका मन किस सवाल पर किस तरह से चलता है यह मुझे उनका निकट परिचय होने से मालूम था। मैंने जवाब दिया—"अभी तो जूनागढ़ जाना चाहिए।" "हा, कुछ ऐसा ही सोच रहा हूं," सरदार साहब ने उत्तर दिया।

दो घंटे के बाद मंत्रिमडल की मजलिस खतम हो गई। हमारे मन्त्रि-मडल मे काग्रेस कार्यसमिति के चन्द सभासद है, किन्तु जैसी लम्बी-लम्बी बहस कार्यसमिति मे होती है वैसी इधर नहीं होती। इसके माने यह नहीं कि यहाँ किसी को अपना व्यासंग या विद्वत्ता बताने के लिए कोई अवसर नही। वास्तव मे कार्यकारिणी का अर्थ है जल्दी जल्दी काम करने वाली

सस्था। समझ लीजिए कि त्वरा ही उसका चैतन्य है, गति ही उसका प्राण है। ऐसा होते हुए भी हमारे मन्त्रिमडल की सभा कभी कभी घटो तक चलती है। विषय विविध होते है। और जो कुछ निर्णय होता है उसका परिणाम व्यापक और दीर्घकालीन होने के कारण अधिक समय बहस मे खर्च होता है।

सभा खतम होने पर मै घर आया। एक घटे बाद सरदार साहब ने फोन पर पूछा—"चलोगे न ?" दिल की बात उन्होने कही। मन जाने को कर ही रहा था। मैने कहा—"हा।" सरदार साहब बोले—"सध्या को आओ, सब कुछ तय करेगे।" दूसरे दिन हवाई जहाज से जूनागढ़ जाने का प्रोग्राम तय हो गया।

हवाई जहाज नवानगर के राजा साहब का था, जिनको जामसाहब कहते है। एक दिन पहले हिम्मतसिह जी उसको ले आये थे। हिम्मतसिह जी जामसाहब के छोटे भाई थे और दो वर्ष के लिए धारासभा के सदस्य भी थे। सरकार की ओर से नामजद होते हुए भी वह सरकारी 'ह्विप' को नही मानते थे। १९४६ मे कई बार उन्होने काग्रेस के साथ राय दी थी। वह कर्नल थे और बरसो तक जापान मे रहे थे। विमान की व्यवस्था बहुत सुन्दर थी और उसमे सफर करने वाले मुसाफिर भी थोडे थे। सरदार साहब, उनकी सुपुत्री, उनके सेक्रेटरी, सजय याने एसोसियेटेड प्रेस का सवाददाता। मगल-प्रभात के समय हमने दिल्ली छोडी। आकाश निरभ्र था। हवाई जहाज बडे वेग से चल रहा था। अन्दर हम सरदार साहब के साथ बाते करने मे व्यस्त थे। इस देश के, खास करके राजनीतिक क्षेत्र मे रहने वाले छोटे-मोटे व्यक्तियों को, सरदार साहब अच्छी तरह पहचानते थे। प्रांत-प्रात के राजनीतिक क्षेत्र की हालत और वहां के विचार-प्रवाह का पूरा-पूरा परिचय सरदार साहब को है यह बात उनके साथ क्षणमात्र

संभाषण करने से मालूम हो जाती है। किसी व्यक्ति का वर्णन एक ही अर्थपूर्ण विशेषण से करने मे वह बड़े पटु है। सारगर्भ वाक्य और मार्मिक पदावलि—ये तो उनके लिए बडी मामूली बात है। समय समय पर उनके शब्द शल्यवत होते है। इस बात को हमारे समाजवादी उनका एक बडा अपराध समझते है। उनके भाषण मे विनोद होने के कारण वह दिल को नही काटता।

हमारे भाषण मे बहुत सारे विषय आ गये, खास करके बम्बई के कार्यकर्त्ताओ और पार्टियो के बारे मे चर्चा हुई। साहित्य को छोड कर सभी विषय चर्चा मे आये। राजनीतिक क्षेत्र मे जो कुछ परिवर्तन हुए थे उनकी चर्चा करते-करते रम्यता और 'क्षण क्षण नवता' प्राप्त होती थी। कुछ महीनो पहिले जामसाहब के वक्तव्यो को हिद-स्वातन्त्र्य का विरोधी माना जाता था। उनकी चाल साफ-साफ हिद के खिलाफ थी। उनमे व सरदार में अहि-नकुलवत सम्बन्ध था। इस बात को तो मै अच्छी तरह जानता था। मैंने जान बूझकर कर्नल साहब से पूछा—'क्यो, पहले जामनगर जाओगे ?" "हा, जामसाहब की इच्छा है, कि पहले सरदार का स्वागत वही करें।" मैंने सरदार साहब की तरफ देखा, वह समझ गये। उन्होने कहा—"अब सब बदल गया।" और वास्तव मे बहुत कुछ परिवर्तित हो चुका था। कुछ परिवर्तित हो रहा था और जो कुछ बचा-खुचा था वह भी निश्चय ही परिवर्तित होने वाला था। भडोल से जितना नही हो सकता था उतना १५ अगस्त को रायसीना मे जो कुछ घटना हुई उससे भारतीय शासन के क्षेत्र मे हो चुका था। सुस्थित विचार-प्रासाद गिर गये थे। राजनीतिक संसार की भूमि हिल उठी थी। अतीत अपना अवशेष केवल स्मृतियो को बता रहा था। और भविष्य कर्तृत्व को खीचने की गडबड़ी मे व्यस्त मालूम होता था। विद्यमान किंचित स्तब्ध, किंचित सभ्रमित किन्तु

आशायुक्त दृष्टि से स्मृतियों को पीछे छोड़कर भविष्य को प्रयत्न रूपी बाजुओं में लेने के लिए आतुरता के साथ कदम-कदम उठाता था। अनेक बुद्धिमान व्यक्तियों के होते हुए भी परिस्थिति करवट बदल चुकी थी, इसका पूरा मूल्यांकण न हुआ। कितने ही सज्जन तर्क को पकड़ते हुए जो हुआ उसे अशक्य बतलाने की कोशिश कर रहे थे। इतिहास के सिद्धांत भौतिक शास्त्र के सिद्धांत के समान निरपेक्ष है, ऐसा समझ कर जो कुछ हुआ वह सिद्धांत के विसंगत हो गया इसलिए वह हुआ ही नहीं इस तरह के विचार रखते थे। जैसे कि हमारे ज्योतिष जानने वाले कहते हैं कि चाहे कुछ भी हुआ हो लेकिन ग्रह ऐसा नहीं बतलाते, इसलिए वह हुआ ही नहीं, उसी तरह यह भी था। राजनीतिक क्षेत्र में जो अपने को बड़े अनुभवी और विज्ञ समझते थे वे आत्म-निरीक्षण करने लगे और सोचने लगे—"आखिर हम विज्ञ हैं या नहीं?" कुछ भी हो, आम जनता तो श्रद्धा के प्रकाश में नेताओं द्वारा बताये गये मार्ग पर चल रही थी।

अचल और नित्य ऐसी कोई वस्तु राजनीति में हो ही नहीं सकती, इस बात को बहुत थोड़े लोग जानते थे। ये लोग प्राप्त की उपासना करके, क्या प्राप्तव्य है और वह कैसे प्राप्त होगा इस विवेचना में थे। संक्षेप में दुनिया बदल गई थी। चन्द लोगों ने समय को समझा, चन्द लोगों को समय समझता था।

जामनगर में स्वागत

हमारी बातें अभी चल ही रही थीं कि हमारा हवाई जहाज जामनगर हवाई-अड्डे पर पहुंचा। यहां सब मरुभूमि थी और ऊपर निरभ्र तथा नीला आकाश था। किन्तु इन दोनों का संगम और सम्मेलन सौंदर्य को ही व्यक्त करता था। ऐसी बाह्य सृष्टि से मन का काव्यमय होना अपरिहार्य था। मराठी कवि की यह पंक्ति याद आ गई—"पति गेले काठियावाडासी,

गिरनार अबूच्या पहाडासी; " जिसका मतलब है कि पति काठियावाड को चले गये, गिरनार और आबू के पहाड मे बसते रहे। कवि तो आबू और गिरनार दो पर्वतो को एक पंक्ति मे लाया है, किन्तु इन दोनो मे अन्तर बहुत है। कविता का वास्तविक अर्थ यह है कि मराठा वीरो ने काठिया-वाड को जीत कर गिरनार तक मोर्चा लगाया था, अपनी वीर पत्नियो को देश मे छोड़कर वे विदेश मे विजय कमाते-कमाते गिरनार तक पहुच गये थे और वहा उन्होने अपनी विजय-पताका फहराई थी। इस पक्ति को मै मन ही मन गाता रहा। इसके शृङ्गार, वीर रस, लज्जत और समाविष्ट भावना को मन मे सोचता-सोचता मैं तद्रूप हो गया। ये सब भावनाएं अब समझ लीजिए पार्थिव रूप लेने लगी। मेरी नजर के सामने वायुयान के बदले पचकल्याणी अबलख घोड़ा खडा है, ऐसा मालूम होने लगा। खादी पहने हुए सरदार को मैने बख्तर पहन सिर पर लोहे का टोप लिये और हाथ मे हथियार लिये हुए सेनापति के रूप मे देखा सर्वत्र हथियार बन्द सिपाही नजर आये। दक्षिण बाहु और दक्षिण आँख स्पदन करने लगे। कुछ शुभ होने वाला है, ऐसी सूचना देने लगे। अब मै हरहर महादेव की घोषणा करके आगे बढ़ने वाला ही था कि इतने मे कर्नल साहब मेरे पास आये और बोले - "जामनगर आ गया"। मै स्वप्न जगत से वास्तविक ससार मे आया। इतने में हमारा हवाई जहाज जमीन पर उतरा और उसकी आवाज होने से हमारा स्वप्न समाप्त हो गया। हवाई अड्डे पर फौज खडी थी। सलामी देने के बाद जामसाहब की गाडी में हम बैठे और उनके प्रासाद मे गये। जलपान हुआ और उसके बाद हम मोटर मे शहर की तरफ चले। मानो सब शहर रास्तो पर खडा है, इतनी भीड़ थी। जगह-जगह द्वार बने थे। "हिन्द विजयी हो", ऐसे-ऐसे फलक स्वर्णाक्षरो में लिखे हुए जगह-जगह नजर

आते थे। यह जामसाहब की नगरी नववधू समान मालूम होती थी। चक्रांवित तिरंग निशानो की मालाएं नववधू का भाल-प्रदेश सुशोभित करती थी। जनता त्योहार की पोशाक पहने औत्सुक्य के साथ भीड को बढ़ाती थी। इस समय स्त्रियो की सहज सुलभ शालीनता मालूम नही कहा लुप्त हो गई थी। स्त्रीवर्ग बहुत प्रगल्भता के साथ आगे जाने की कोशिश करता था, एसा मालूम होता था। सब जगह पहली कतार उन्ही की थी। सख्या मे भी वह अधिक मालूम होती थी। उच्च, श्यामल किन्तु आकर्षक सिर पर जलकलश लिये हजारो नारिया मार्ग मे नजर आती थी। वहा राजपुरुष का स्वागत करने की ही प्रथा है। हम आहिस्ते-आहिस्ते जा रहे थे। जामसाहब हमारे सारथी थे। सर्वत्र मालाओ और फूलो की वर्षा होती थी। कई मील तक मोटर चलती रही। दोनो तरफ जनता-सागर उत्साह से प्रफुल्लित हो रहा था, नारे सुने जाते थे। दो घंटो के बाद हम प्रासाद मे वापस आये। अगर काठियावाड मे सरदार साहब हस्तक्षेप करेंगे तो उनके लिए खतरा है, ऐसी चेतावनी देने वाले जाम-साहब आज हवाई अड्डे पर सरदार साहब के स्वागत मे आये, उनको बडा भाई कहकर आलिगन किया, उनका सारथ्य भी किया। दिल्ली-पति के समान उनका प्रबन्ध रखा। इन सब बातो को मै सोचता रहा। इस सब का क्या मतलब है? सरदार आज सत्ताधीश है। सब गुण काचन का आश्रय करते है और सब जनता सत्ता को प्रणाम करती है, यही सत्य है।

राजकोट में अपूर्व उत्साह

भोजन के बाद हम हवाई अड्डे पर आये और कोई एक घटे मे राजकोट पहुचे। हवाई अड्डे पर मराठा पलटन ने स्वागत किया। बाद मे हम रेसिडेन्सी गये।

आध घंटे मे हम सभा स्थान पर पहुचे। वहा प्रचंड जनसमुदाय उपस्थित था। इसी शहर मे १६३६ के मार्च मास मे महात्माजी ने अनशन किया था। वह बात आज याद आई। वह राजा अब स्मृति मात्र रह गया था और उस प्रधान का जो राजा से भी अधिक उन्मत्त था, आज इस दुनिया मे नामोनिशान भी नही था। वह अनियत्रित सत्ता बरबाद हो चुकी थी। आज के जलसे मे महत्त्व का ऐलान होनेवाला है, ऐसा मालूम होता था। और जनता भी बहुत उत्सुक थी। जनता की स्वातन्त्र्य-लालसा पहले से ज्यादा तीव्र थी। जनता उत्तरदायी सरकार को पुरुपार्थ मानती है। राजकोट के ठाकुर सभापति थे और सभा मे काठिया-वाड का दुश्मन और विप्लवी आज बोलने वाला था। जनता का तो वह पहले से मित्र था और राजा लोग उसकी मैत्री सम्पादन करने मे व्यस्त हो गये थे। ठाकुर साहब ने सभापति की हैसियत से सरदार साहब का स्वागत किया और उत्तरदायी सरकार बहाल करने की घोपणा की। तालिया गूंज उठी। बिजली की रोशनी मे ऐसा मालूम होता था कि विकसित कमलो का यह बगीचा है, क्योकि जनता प्रमुदित हो गई थी और आनन्द लोगो के मुख पर नाच रहा था। सरदार साहब ने अपना भाषण गुजराती मे दिया। उन्होने केन्द्रीय सरकार की नीति का विवरण दिया; जो हिंद मे आ गये थे, उनको बधाई दी और जो विरोधी थे और मुखालफत करते थे उनको चन्द सारगर्भित शब्दो मे समझाया। जो अनिश्चित थे उनके भविष्य का उन्होने अच्छी तरह कथन किया। ज्यो-ज्यो सरदार साहब बातें करते जाते थे त्यो-त्यो जनता उत्तेजित और उल्लसित होती थी। उनका वक्तृत्व स्वर मे शीतल किन्तु अर्थ मे तेजस्वी था। परिणाम यह हुआ कि सागर के समान जनता के अन्दर शांति और बडवानल जो दोनो बाते थीं उनपर साथ-साथ प्रभाव होता रहा। इस

दृश्य को देखकर एसोसियेटेड प्रेस के सवाददाता सरदार का भाषण न समझते हुए भी तालिया बजाते थे। अर्थ के पहले आवाज से वे समरस हो गये थे। और जब मैने उनको अंग्रेजी मे उस भाषण का अनुवाद बताया तो उनको यह व्यग्रता हुई कि कब मै ये सब बाते सारी दुनियां को बताऊँगा।

रात को हम रेसिडेन्सी मे रहे, वह प्रासाद-तुल्य रेसिडेन्सी जिसमे गवर्नर और वाइसराय को ही मेहमानी दी जाती थी। आज उसमे सामान्य जन और उनके नेता रह गये थे। मै समझता हू इस बात को भी यह परिवर्तन अच्छा मालूम होता था। जैसे जीवन मे वैसे ही पार्थिव सृष्टि मे भी विविधता और वैचित्र्य आनन्द को जन्म देता है। वैसे तो वैचित्र्य ही जीवन का सार है।

तारीख़ १२ नवम्बर १९४७ की रात हमने राजकोट की रेसिडेन्सी मे गुजारी। यह रात संवत्सर की आखिरी रात थी। अमावस तिथि थी और आनेवाला दिन नूतन सवत्सर का पहला दिन था, वर्षारंभ का दिन। यह बात सच थी कि एक जमाना खतम हो चुका था और दूसरा शुरू हो रहा था। सुप्रभात काल मे स्नान करके हम लोग हवाई अड्डे पर आ पहुचे और चन्द मिन्टो के अन्दर जूनागढ़ पहुंचने वाले थे। हमारा वायुयान आकाश मार्ग को काट रहा था। गिरनार पर्वत के शिखर नजर आने लगे। कर्नल कहने लगे—"इस पर्वत राजी मे सिह रहते है।" मैने कहा—"दिल्ली मे भी सिह हैं।" उन्होने शका और आश्चर्य के साथ मेरी तरफ़ देखा। आगे मैने कहा—"उनमे से कुछ इसी वायुयान मे है।" और मैं सरदार साहब की तरफ देखने लगा। खुद की तरफ देखने का मोह मैने महान तपस्वी के सयम-समान रोका। कर्नल हसे और उन्होने कहा—"हां, ठीक है।" किसीने कहा—"सिह का शिकार तो गायब हो गया।"

मैंने कहा—"कुछ अवसर तक, किन्तु पलायन से। खैर मैदान तो अभी साफ हो गया।"

गिरनार पर्वत को बाईं ओर छोड़ हमारा हवाई जहाज जूनागढ शहर के ऊपर से किसोदे हवाई अड्डे पर उतरा। यह अड्डा जूनागढ़ से लगभग तीस मील है। हवाई-अड्डे की हालत कुछ रणक्षेत्र सरीखी मालूम होती थी। वहा दो-चार नागरिक नजर आये, शेष सब सैनिक थे। सब तरफ जीप खडी थी। सैनिक जन मराठा पलटन के थे। कुछ अफसर भी मराठा थ। सरदार साहब ओर मै एक जीप मे बैठे आगे और पीछे जीप चलती थीं। उनमे सैनिक थे और उनके हाथो मे स्टेनगन थी। किसी भी काम के लिए वे तैयार मालूम होते थे। उनके शरीर मे आनन्द व्याप्त था। कारण यह था कि दो ही दिन पहले जूनागढ़ की हुकूमत ने शरणागति मंजूर करके अधिकार भारत-सरकार को बहाल किया था। इस सिलसिले मे इन सैनिकों ने बडी खूबी के साथ काम किया था। सैकडो अरब और पठान जूनागढ मे सशस्त्र थे और वे गडबड करेंगे ऐसा माना जाता था। पुलिस और फौजी अफसर हुकूमत द्वारा मानी गई हार मानेंगे या नहीं, इसका पता नही था। इसलिए शहर का कब्जा लेने के वक्त कैसी भी हालत हो उसका मुकाबला करने के लिए सब तैयारियां करके भारतीय-अफसरो ने प्रबन्ध किया था। यही कारण था कि हमारे सैनिक विजय के आनन्द मे थे, लेकिन वे बेहोश नहीं थे। अनुशासित थे, किन्तु उद्धत नहीं थे। आगे-पीछे फौज और बीच मे हमारी जीप इस तरह से हम चल रहे थे। स्टेशन को जाने वाला रास्ता खास तौर पर बनाया गया मालूम होता था। दोनो बाजू फासले-फासले पर सशस्त्र और सुसज्जित सैनिक खडे थे। स्टेशन के प्लेटफार्म पर थोडी संख्या में किसान और अफसर नजर आते थे। शरीर मे पैजामा और एक खास किस्म का

कुरता, सिर पर काठियावाडी फेटा, बदन से ज्यादा और ऊँचा, मुख पर किंचित कठोरता-- इस तरह का स्वरूप वहां खड़े हुए किसानो का मालूम होता था। जहा हम जीप से उतरे वहा से रेलवे के सैलून तक सैनिको की दो कतारे खडी थी। बीच मे से जब हम चले तो फूलो की वर्षा हुई और 'हिन्दुस्तान जिन्दाबाद' के नारे सहस्र-सहस्र कंठो से उछलते रहे। इस बडी भारी भीड मे मेरा मन सोचने लगा—"अगर कोई दुष्ट-बुद्धि मुसलमान हो तो क्या ?" फौरन मै सरदार साहब के पास-पास चलने लगा और ज्यादा सतर्क होकर इधर-उधर देखने लगा। हम सैलून मे बैठे। इतने मे कुछ अन्तर पर 'जय सोमनाथ' की आवाज मैने सुनी। उस ओर देखा। एक ऊँचा, वृद्ध किन्तु तेजः पुंज, भाल के ऊपर तिलक लगाये, मुद्रा गम्भीर, किन्तु कृत-कृत्य का संतोष जिसके चेहरे से टपकता था, ऐसा सज्जन खडा था। एक बार फिर उसने वही गर्जना की और वन्दन किया। मेरी इच्छा उसकी ओर देर तक देखने की थी। इतने में गाडी चल दी। डेढ घंटे तक रेलवे का यह प्रवास जारी रहा। प्रदेश बडा अच्छा मालूम होता था। बीच-बीच मे वृक्ष और बगीचे भी नजर आते थे। करीब दस बजे हमारी गाडी जूनागढ़ स्टेशन पर पहुची। मैं सोचता था और चिन्तित भी था कि देखे क्या दृश्य नजर आयेगा। सरदार साहब आज तो विजेता के नाते से जा रहे थे। पराजित कैसा बर्ताव करेंगे, उनके विचार क्या होंगे, उनकी भावना क्या रहेगी, इन्ही बातो पर मै विचार कर रहा था। मन मे विचारो की भीड थी, बाहर लोगो की। स्टेशन पर, ऐसा समझ लीजिए, शृंगार अपना महोत्सव मनाता था। दीर्घकाल के बाद मिलन होने के वक्त जिस किस्म का वातावरण होता है वैसा ही यहा था। विरह की रात खत्म हो चुकी थी। हिंदू जनता आज अन्तःकरण से कृतज्ञता और गति मे निर्भयता दिखलाती थी। बरसो तक अपमानित हुआ

स्वाभिमान गर्दन को उन्नत करके नवप्राप्त सम्मान को शान के साथ अनुभव कर रहा था। सब प्लेटफार्म सचेतन हो गया है, ऐसा मालूम होता था। हरेक व्यक्ति के हाथ मे फूल की माला थी। हरेक व्यक्ति सरदार साहब को हार पहनाने के लिए आतुर था। डिब्बे से उतर कर पुष्पहारो को लेते-लेते हम वेटिंग रूम मे पहुंचे। वहा जूनागढ के लुप्ताधिकार नौकर और हुकूमत चलाने वाले खडे थे। नवाब साहब ने तो "मै हाथ मे शस्त्र नही लूंगा" मानो ऐसी प्रतिज्ञा करके जूनागढ को 'अले-कुम' करके खुद को 'पाकगत' किया था। जाते वक्त उन्होने अपने साथ सपत्ति और कुत्ता यही पाथेय लिया। स्थावर को छोडकर यही जगम चीज उन्होने पसन्द की। शायद उसीको उन्होने श्रेष्ठ माना होगा। बात यह थी कि जहा उन्होने फूल का संचय किया था वहा आज वह कडे उठाने के लिए तैयार नही थे। वह काम उन्होने अपने वफादार 'दोस्त-इ-दौलत' नौकरो के ऊपर सौप दिया था। उस कतार मे खडे हुए ओहदेदारो मे न्यायाधीश थे, सेनापति थे, अष्टप्रधान थे। इनमे एक अग्रेज और सब मुसलमान थे। अग्रेज ओहदेदार बिलकुल 'सुख दुःखे समेकृत्वा' जैसे रूप मे था। जैसे काला-टोपी गुनहगार अलिप्त मन से मजिस्ट्रेट के सामने खड़ा होता है उसी तरह वह खडा था और मुंह पर कृत्रिम हास्य लाके नैसर्गिक दुःख को छिपाने की कोशिश करता था। जनता को त्रस्त करने वाला यह अधिकारी वर्ग मणि-विहीन सर्प के समान निस्तेज मालूम होता था। उनके सामने से हम जा रहे थे। हरेक का हमसे परिचय कराया जाता था। एक सस्मरणीय और ऐतिहासिक घटना हो रही थी। फ्रास और जर्मनी की शरणागति के समय याद आये। बचपन मे राजा पौरस ने अपनी तलवार सिकन्दर के सामने रखी थी, ऐसा मैने इतिहास मे पढ़ा था और वह बात याद आगई। बडे मुह

से 'हिंद के साथ लडे गे' ऐसे नारे लगाने वाले ये ओहदेदार अभी उत्तर के अनुयायी बन गये यह देखकर विश्वास आगया कि कभी न कभी इतिहास भी इसाफ करता है। हम आगे चले तो आरजी हुकूमत के प्रमुख सामलदास गाधी और उनके साथी खडे थे। उनके साथ हमारा परिचय कराया गया। कुछ ही सप्ताह पहले अल्पारम्भ करके जूनागढ़ रियासत को अपने सगठन में लानेवाले सामलदासजी बडे प्रतिष्ठा-संपन्न सज्जन है। बडे धैर्य और चातुर्य के साथ उन्होने कदम उठाया। समय को समझा। कर्तव्यभूमि को बचाया और बिलकुल ठीक मुहूर्त पर प्रहार करके विजय पाई। यह बात ठीक है कि देश मे जो हो रहा था उसकी वजह से उनको विजय प्राप्त हुई। लेकिन साथ-साथ यह भी ठीक नही होगा कि हम उनके कर्तृत्व को कम समझे या कम माने। जूनागढ़ की पुरानी हुकूमत और जूनागढ की आरजी हुकूमत इन दोनो के प्रमुख व्यक्तियो के साथ जब हमारा परिचय कराया जाता था तो मानो ऐसा [illegible] कि हम दो पृथक्-पृथक् जमाने से जा रहे है। ऐसा लगता था जैसे एक का विनाश और दूसरे का उदय हो रहा है।

मोटर मे बैठकर हम शहर की तरफ चले। पुराना शहर दीवालो के अन्दर है। नई बस्ती, दफ्तर, कालेज आदि संस्थाएं किले के बाहर है। रास्ते मे सब जगह सैनिक नजर आते थे। एक बड़ी कोठी मे, जो राजप्रासाद के समान मालूम होती थी, हमारी गाडी गई। वहा तोपें, टैंक और हाथ मे बन्दूक लिए हुए जवान भरे हुए थे। वह सेनापति की छावनी थी। वहा हमारा हैडक्वार्टर के अफसरो के साथ परिचय करवाया गया। उन अफसरो मे कई महाराष्ट्रीय भी थे। चाय पीने के बाद हम सभा-स्थान पर गये। वहा भी पूरा फौजी बन्दोबस्त था। चारो ओर राइफल लिये सैनिक खड़े थ। सभास्थान को फौज ने घेर लिया था। किन्तु जनता खुश

मालूम होती थी। यह बन्धन नहीं था, सरक्षण था। जनता और सेना के मनो मे मिलन हो गया था। सैनिको को जनता देखती थी, लेकिन उसके मन मे डर के बदले अभिमान था। आत्मीय वातावरण की वजह से सुख और आनन्द उस सभास्थान मे क्रीडा करते थे। जब सरदार वहां आये, प्रचड जयघोष हुआ। जनता तो उनके नजदीक आने के लिए आतुर थी ही, सैनिकजन और भी आतुर थे। कुछ मिनटो के अन्दर कतार के साथ सभास्थान को घेरे हुए सैनिक जनतासागर मे विलीन हो गये। खादी और खाकी एक जगह आने की वजह से विविधता मे कुछ मौलिक एकता भी मालूम होने लगी।

स्वागत के बाद सरदार साहब ने अपना भाषण शुरू किया। उन्होने मुसलमानो को पूर्ण नागरिकत्व और संरक्षण का आश्वासन दिया। फिर जूनागढ़ हिंदुस्तान मे आना चाहता है या नही, यह सवाल किया। फौरन हिंदुस्तान जिंदाबाद के नारे लगे। हजारो हाथ ऊपर हो गये। एक क्षण के अन्दर जनमत आजमाया गया। भूमि पर बैठे हुए लोग अपने सहस्रा-वधी हाथो को ऊपर करते थे। ऊपर से सहस्र-रश्मि यह दृश्य देख रहा था। भूमिस्थित हरेक व्यक्ति मानो अपना शरीर पूर्णरूपेण बाहुरूप क्यो नही हुआ ऐसा मानता था और बार-बार हाथ ऊपर करता था। अनियन्त्रित सत्ता के पदतलों से दलित हुए, जबरदस्ती से पीडित हुए, जीवन और वित्त के सतत विवेचना मे गिरे हुए ये जीव सकट से मुक्त हुए मानो मन का आनन्द और प्राफुल्य अपने कर-कमलो से दिग्दर्शित कर रहे थे। फोटोग्राफर को शायद ही कभी इतना मनोहारी और ऐतिहासिक दृश्य मिला होगा। ऊपर उठाये हुए हाथ मानो पुराने जमाने की पुरानी हुकूमत को स्वर्ग का मार्ग बता रहे थे।

जब सामलदास जी खडे हुए तो फिर से जयनाद हुआ। "अब मेरा

कार्य हो चुका, मै हिन्दुस्थान सरकार का एक आज्ञाकारी नागरिक हूं और रहूगा; मैंने जो कुछ किया वह जनता के लिए, उसमे न किसी जाति का सवाल था, न किसी धर्म का।" सामलदास जी के ये शब्द सुनकर प्रेक्षको ने, जिनमे कई मुसलमान थे, तालिया बजाईं।

सभा खतम होने के बाद हम स्टेशन आये। वहा पता लगा कि हम सोमनाथ या प्रभातपट्टण को जा रहे है।

१३ नवम्बर १९४७! यह तो नवसंवत्सर का पहला दिन था। सुबह से दक्षिण भुजा फडक रही थी। मन में कुछ व्याकुलता थी। कुछ-न कुछ अच्छा होने वाला है, ऐसा मन को मालूम होता था, किन्तु बात स्पष्ट नही थी। विचारो के दृष्टिक्षेत्र मे कुछ अभिनव नजर नही आता था। जो कुछ अबतक हो चुका था वह कोई बडी आने वाली घटना की सुन्दर पार्श्वभूमि है, ऐसा ही विचार मन मे आया। ऐसा प्रतीत हुआ मानो कोई सुन्दर ध्वनि हम सुन रहे है। लेकिन आनेवाला संगीत कौनसा है, यह नही जान सकते थे। सैलन मे सेनापति ने प्रोग्राम बताया। उसमे सोमनाथ मन्दिर को देखना भी था। वहा मुझे पता चला कि सोमनाथ मदिर, प्रभातपट्टण जूनागढ के क्षेत्र मे है। इस बात का पता चलते ही विचार-चक्र शुरू होगया। गाडी बेरावल पहुची। वहां हम गाडी से उतर गये और फौरन मोटर मे बैठकर प्रभातपट्टण को रवाना हो गये। यहा से प्रभातपट्टण ६ मील था। प्रवास मे हम बिल्कुल भूमिपुत्र हो गये, यानी धूलि से भर गये। रास्ते के दोनो बाजू कब्रिस्तान नजर आते थे। उनमे जगह-जगह लोग खडे हमारा स्वागत करते थे जिससे जीवन और मृत्यु का नित्य साहचर्य प्रस्थापित होता था। थोडी ही देर मे हम किले की गिरी हुए दीवाल के पास आये ओर वहा से हमने 'त्रिवेणी' मे प्रवेश किया। जिस भूमिभाग पर आबादी है उसे त्रिवेणी कहते है। कुछ मकान ठीक थे, किन्तु

अधिकतर गिरे हुए थे। इन दोनो को देखते-देखते हम सोमनाथ मदिर के सामने आगये। श्मशान, गिरा हुआ किला, गिरे हुए मकान मानो यह नष्ट सृष्टि हमारी आखो के लिए पूरी नही थी, इसलिए हमारी दृष्टि के सामने यह भग्न मदिर आगया। अन्तःकरण मे तूफान-सा उठा। दिल बेचैन होने लगा। हमारे इर्द गिर्द सैकडो लोग थे। ये सब हिन्दू जिन्दा थे और हमारे सामने उनका भग्न मंदिर खड़ा था। यह दृश्य शल्य से भी ज्यादा दुःख देनेवाला मालूम हुआ। बीच मे मंदिर और चारो तरफ खाली जगह थी। तीन तरफ से चहारदीवारी थी, जो बहुत कुछ गिरी हुई थी। पश्चिम में लगभग बीस फुट के फासले पर अरब सागर अमर्याद विस्तार से मानो पहरा दे रहा था। एक छोटा फाटक था, उसमे से हमने अन्दर प्रवेश किया। सामने मंदिर का प्रवेश द्वारा था, किन्तु वहां न द्वार था न चौखट।

ऊपर देखा तो शिखर भी नजर नही आता था। याद आई कि इतिहास मे लिखा है इस मदिर के चंदनी दरवाजे महमूद ग़ज़नी काबुल ले गया था। हृदय में हजारो भावनाए उठने लगी। इसी जगह हजार वर्ष पहले इस्लाम के अनुयाइयो ने इस मदिर की बेइज्जती की थी। इन अविधो ने बारह ज्योतिलिगो मे से एक इस 'पश्चिम' सागराधीश भगवान को मही मे मिला दिया था। जान से भी धर्म प्यारा मानने वाले हिदू जान को ज्यादा मान कर उस समय भाग गये थे। जिसके लिए जिन्दा रहना व जिसके लिए मरना कर्त्तव्य समझा जाता था उस धर्म को मानने वाले उस वक्त कहा थे? सोमनाथ के सेवादारो ने देवालय की मूर्ति के संरक्षण के लिए मृत्यु का मोल देने के बजाय द्रव्य के साथ सौदा करना चाहा। 'मै मूर्ति बेचने वाला नही, मै मूर्ति का भंजन करने वाला हू'— इसी वृत्ति से प्रेरित होता हुआ महमद एक महान व्यक्ति था इसमे कोई

शका नही। कौन जानता है, कितनी बार वह इस महान् देश से सपत्ति और सतिया अपने देश ले गया ? मन मे सताप, उद्वेग, नफरत, नानाविध भावनाओ का मानो एक सम्मेलन और संघर्ष होता था। क्या सर्वशक्तिमान प्रभु एक सामान्य मानव के सामने हतबल हो गया। अपने तृतीय नेत्र से जग का सहार करने वाला श्री शकर अपनी तीनो आंखे बन्द करके संहार देख रहा था ? नही, नही ये देवता नही हो सकते। ये देव नही, जब इनमे देवत्व और कर्तृत्व ऐसे मानने वाले लोग न हो। आखिर परमेश्वर तो मनुष्य रूप से ही काम करता है ! उसकी शक्ति का आविष्कार करने वाला माध्यम कच्चा या कायर हो तो उसमे दोष शक्ति का कैसा ! झूठे धर्म से चलने वाली जनता मृत्यु-भय का त्याग ध्येय के लिए, आदर्श के लिए, कर नही सकती। श्रद्धा गुंजाइश को बर्दाश्त नही करती। श्रद्धा या तो जीती रहेगी या मरेगी। श्रद्धा और समझौते मे समन्वय नही। एक चाल से ये दोनो नही चल सकते। मूर्ति को तोड़ना अगर धर्म है, अगर श्रद्धा है तो उसे बेचना धर्म-विरोधी काफिर का काम है। उसे बेचने का अर्थ अश्रद्धा प्रकट करना है। श्रद्धा के लिए मानव न मरे तो उसकी या तो श्रद्धा कम है या मानवता।

मैं मन्दिर को देख रहा था। वह सौदर्यपूर्ण कलाकृति का नमूना आज बिलकुल बेडौल मालूम होता था। रेखबध और प्रमाणबध रचना आज हताहत हुई प्रतीत होती थी। दुःखी अन्तःकरण से हमने अन्दर प्रवेश किया। पहले भाग मे अभी-अभी कुछ सफाई की गई है, ऐसा मालूम होता था। आगे जाकर सोमनाथ की मूर्ति नजर आयगी, इस विचार से मै आगे बढा तो जो कुछ दृश्य देखा उससे मन और शरीर बिलकुल निश्प्राण हो गया। ऊपर देखा तो शिखर नही था, एक बड़ा छेद था जिससे ऊपर का नीला आसमान नजर आता था। वही क्षेत्र था।

जिस जगह मूर्ति होनी चाहिए उस जगह एक बडा खड्डा था। वहा मूर्ति नही थी। इसी स्थान पर खड़े होकर उन अविध्य ने धर्म-कार्य समझकर मूर्ति को फोड-तोडकर उसका भजन किया था, यह इतिहास है। कहा जाता है कि कुछ लोग मूर्ति को बचाने के लिए उसके ऊपर गिरे। किन्तु उनको भी खतम कर दिया गया। जैसे प्राण-हीन शरीर होता है और रसहीन काव्य होता है वैसा ही वह मूर्तिविहीन मंदिर मालूम होता था। मेरी भावनाओ को सम्पूर्णतया वर्णन करने मे भापा असमर्थ है। कहा गई थी वह वैदिक सस्कृति, कहा था वह पूर्वजो का पराक्रम, क्या हुआ था उस 'कृण्वन्तो विश्वार्यम' की घोपणा को ? हमारी मत्सर वृत्ति, भाई-भाई का वैर, धर्म और देश से व्यक्तिगत स्वार्थ और प्रतिष्ठा को ज्यादा मानने वाली हमारी वृत्ति—इन्होने इतिहासकाल मे हमे बरबाद किया और वही काम अभी भी हो रहा है। मुझे अपने से नफरत हो आई।

समय पर छोड देने वाला या धोका देने वाला धैर्य, धैर्य नही। निश्चय ही कुछ-न-कुछ हमारे धर्म मे, या हमारी सस्कृति मे, या हमारी मनोरचना मे दोष है। वैयक्तिक मत का अभिमान और अहकार समाज-कार्य के लिए हम कब छोडेंगे ? सामुदायिक हित और प्रतिष्ठा मे हम कब रस लेंगे ? कब हम जुडाई का मर्म समझेंगे ? कब हम विवेक को जोडेंगे ? कौन जाने, कौन यह करने वाला है ? ऐसे विषण्ण विचार मन को काटते थे। इतने मे सामने की दीवाल के ऊपर बड़े अक्षरो मे लिखा हुआ 'महाराष्ट्र' शब्द मैने देखा। उस शब्द मे क्या जादू है यह वही जानता है जिसकी मातृभापा मराठी है। लोहा से पारस का स्पर्श होने से वह जैसे सुवर्ण हो जाता है उसी तरह यह शब्द नयनो से मन मे जाते ही विषण्ण विचारो का रूपान्तर प्रेरणा मे हो गया। अनन्त भावना इस शब्द मे समाविष्ट है। अच्छा और बुरा, पराक्रम का और पराभव का अटूट स्वार्थत्याग

का और वाञ्छनीय लोभ का, जीवित की तमा न मनाने वाला और जान के लिए लाचार होने वाला ऐसा विविध इतिहास इस शब्द मे समाया हुआ है। हिदवी स्वराज्य का झडा अटक के किनारे लगाने वाले पराक्रमी पुरुखो का मै वशज इस भग्न मन्दिर को, इस मूर्तिहीन देवालय को कैसे देखूं, इस दृश्य को कैसे बर्दाश्त करूं ? शरीर रोमांचित हो गया। प्रेरणा रम्य कल्पना को जन्म देती रही। कुछ मंगल हो रहा है, ऐसी कुछ सुख की भावना मन को उल्लसित करने लगी। मैंने सरदार की तरफ देखा और मै बोला—"यह मैं बर्दाश्त नही कर सकता।" कुछ और बातें मेरे मन मे आ रही थी। मै समझा कि मेरे मन मे जो हो रहा है उसका कुछ अन्दाजा सरदार को लगा। मन के विचार अधिकतर स्पष्ट होने लगे। कल्पना रूप लेने लगी। हम मन्दिर के बाहर आये और पश्चिम की ओर सागर के पास हम गये। सागर मे ज्वार आ रहा था। उसे यह तो मालूम नही हो गया था कि मेरे मन मे क्या है। जो रम्य कल्पना मेरे मन मे जन्म पा चुकी थी उसका स्वागत करने के लिए तो वह नही आ रहा था ? जिन वीर पुरुषो ने इस देश को सदियो के बाद स्वातन्त्र्य और एकता दी उनके कृतज्ञतापूर्ण पाद-प्रक्षालन के लिए तो वह नही आ रहा था ? इस प्रचंड देश मे बहुविध घटनाये हुई, भाग्योदय हुआ, नाश हुआ। लोग चढ़े और गिरे। इन सब बातो को देखने वाला यह गवाह ऐसा मालूम होता था कुछ बात देखने क लिए उत्सुक है। सागर के तीर के ऊपर मैंने अपनी कल्पना सरदार के सामने रखी। सुनते ही वह आनंदित हो गये। उन्होंने मेरे कधे पर हाथ रखा और कहा—'करो।"

फौरन मै और सरदार पानी के पास आये, हमने पाद-प्रक्षालन किया और चन्द मिनट बाद हम मन्दिर के पास आये। अभी मन्दिर मेरे पीछे था। मैं, सरदार और जामसाहब प्रवेश-द्वार की देहली पर खडे हो गये।

लोगो को बुलाया गया। दाहिने बाजू सागर क्षण-क्षण उल्लसित हो रहा था। हमारे सामने और बाईं ओर जनसागर भी उत्सुक और उल्लसित हो रहा था। पार्श्वभूमि मे भग्न वस्तु निस्तब्ध थी। मैने घोषणा की कि हिंद सरकार ने इस देवालय का जीर्णोद्धार करने का निर्णय किया है। हमारी पाई हुई सत्ता नाश के लिए नही निर्माण के लिए है। यही हमारा जीवन कार्य है। तालियो का प्रचंड नाद हुआ और एकाएक स्फूर्ति के साथ लोगो ने "जय सोमनाथ" की हुकार लगाई।

एक निमिष के अन्दर सब वायुमडल बदल गया। हा, एक हजार वर्षों के बाद इस स्थान पर इस घडी मे यह घोषणा हो रही थी। एक हजार वर्षों के बाद इतिहास अपना ऋण चुका रहा था। जामसाहब ने एक लाख रुपया प्रदान करने की घोषणा की। वहा से जनसमूह 'जय सोमनाथ, जय सोमनाथ' नारे लगाता हुआ देवी अहिल्यादेवी द्वारा बनाये हुए सोमनाथ मंदिर की तरफ चला। वहा सभा का प्रोग्राम रखा गया था। उसी सभा मे सरदार साहब ने भी ऐलान किया—"आज नूतन संवत्सर का पहला दिन है। आज के शुभ अवसर पर शिवालय का जीर्णोद्धार करने का निर्णय हिन्दुस्थान सरकार ने घोषित किया है।" फिर से 'जय सोमनाथ' के नारे सुने गये और लोगो ने इस बारे मे दान देने के ऐलान किये। सारा प्रभातपट्टन मानो आज जाग्रत हो गया। यह इतिहासकालीन युद्ध-घोषणा हजार वर्षों के बाद प्रभातपट्टन की आबादी मे सुनाई गई। सभा-समाप्ति के बाद हम वापस चले। मेरे मन मे यह विचारधारा बहने लगी कि आगे कैसे काम करे। रास्ते मे किले के पास सरदार साहब बोले—"इसको दुरुस्त करो। इस श्मशान, इस क़ब्रिस्तान की जगह बग़ीचा बनाओ।" मतलब यह था कि नष्ट-युग समाप्त हुआ था और निर्माण-युग शुरू हुआ था।

सोमनाथ के जीर्णोद्धार का निर्णय बेतार के तार द्वारा चन्द मिनटो के अन्दर भारत देश मे फैल गया। वेरावल स्टेशन के ऊपर सेवादार आये। उन्होंने हमे आशीर्वाद दिया। गाडी चली। हम किसोदे स्टेशन आये और वहां से हवाई-अड्डे पर गये। आध घंटे के अन्दर हम जामनगर के हवाई-अड्डे पर पहुचे। वहा तो जबरदस्त भीड़ जमा थी। रानी साहिबा ने हमे बधाई दी। दरबार गोपालदास बोले—"अभी मुझे पता लगा है कि सरदार के साथ आप क्यो आये? जीवन मे यह कुछ नया अनुभव नही था। जो किया था वह स्फूर्ति के साथ, उसके बारे मे कुछ दीर्घ विचार या पूर्व सूचना नही थी। किन्तु स्फूर्ति ने जो कुछ किया उसके लिये संकल्प का सद्‌गुण मुझपर लगाया गया, ऐसा अनुभव बहुत बार मुझे हुआ है। चाय लेने के बाद हम फिर विमान मे बैठे। तेज़ी के साथ दिल्ली की ओर हमारा विमान जा रहा था। आते वक्त क्या विचार थे और जाते वक्त क्या। मुझे ऐसा लगता था जैसे मेरे नयनो के सामने हज़ारो हिन्दू वीर 'जय सोमनाथ, जय सोमनाथ' कर रहे है। सर्वत्र आनन्द और मगल नजर आता था। वास्तविक कार्य मे कुछ बिलम्ब था, किन्तु कल्पना का बीज बोया जा चुका था। एक हज़ार वर्षों के बाद इतिहास अपनी चाल बदल रहा था। यह एक बिलकुल क्रातिकारी बात थी और देश ने भी वैसा ही माना। किसी ने कहा—"हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान हो रहा है।" किसी ने कहा—"पुरानी कला का उद्धार हो रहा है।" किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ। किन्तु एक बात में सब की राय एक थी, और वह बात थी 'जय सोमनाथ' की घोषणा।

"ग्यानू मरा नहीं, बच्चा बन गया है"

जो राजबन्दी जेल से छूटकर आते हैं, उनका यह एक कर्त्तव्य हो जाता है कि वे उन कैदियो के सगे सम्बन्धियों से मिले, जिनके साथ उन्होंने जेल मे दिन बिताये हैं। महीनो तक अथवा बरसो तक जो लोग इकट्ठे रहते हैं, उनके स्नेह-सम्बन्धो का एक-दूसरे के जीवनो पर प्रभाव पडे बिना नही रहता। यदि यह सहनिवास बाहर न होकर जेल मे हुआ हो तो उसका प्रभाव जीवन पर और भी अधिक पड़ता है आज मुझे यह नही बताना है कि दीर्घ-कालिक कारावास का व्यक्ति के जीवन पर क्या प्रभाव होता है, प्रत्युत जब कैदी यह बताता है कि इकट्ठे एक साथ नहीं छूटते, कभी कोई छूटता है कभी कोई, तो उस अवस्था मे उनकी मानसिक अवस्था क्या होती है। पच्चीस गत वर्षों में दस बारह बार मै जेल हो आया हू। तीन प्रातो की कुल जमा सात जेलों में रहने का अवसर मुझे

मिला है। जितनी बार जेल गया उतनी ही बार जेल से छूटा भी। जीवन और मरण जैसे एक द्वन्द्व है, उसी प्रकार क़ैद और रिहाई भी एक द्वन्द्व है। जिस प्रकार यह एक अटल नियम है कि जो पैदा हुआ है वह अवश्य मरेगा उसी प्रकार यह भी अटल ही है कि जो गिरफ्तार हुआ है वह रिहा होगा। पर इसका यह मतलब नहीं कि इस नियम का अर्थ-ज्ञान राजबन्दी को पहले ही किसी दिन हो चुका होता है। हा एक बात पक्की है। रिहाई के दिन उसकी मानसिक अवस्था अनिश्चित-सी रहती है। वह खुशी भले ही महसूस कर रहा हो फिर भी उसके चित्त मे एक प्रकार का विभ्रम-सा रहता है। अपने अनेक कैदी साथियो को पीछे छोड़कर जब वह रिहा होने लगता है, उस समय उसकी मनोदशा बहुत कुछ दयनीय रहती है। उस अवस्था मे वह अनेक राजबन्दियो के संदेश लिया करता है, ताकि उन्हे वह उनके प्रियजनो तक पहुचा सके।

मैं जब जेल से छूटा तो उस समय अपने साथ जेल में रहनेवाले अनेक तरुण कार्यकर्त्ताओ के सदेशो का, जिन्हे उनके प्रिय परिजनो तक पहुँचाना था, बोझा लिए हुए बाहर आया। प्रच्छन्न अथवा अप्रच्छन्न अनेक रीतियो से कैदियो का अपने प्रियजनो से पत्र-व्यवहार तो चलता ही रहता है, तो भी जेल से रिहा होकर आए हुये व्यक्ति के मुख से अपने बेटे, भाई तथा पत्नी की खबरे सुनकर सम्बन्धियो को ऐसा ही आनन्द अनुभव होता है, जैसा उनको प्रत्यक्ष मुलाकात मे हुआ करता है। कालिदास की यह उक्ति 'कान्तोदन्तः . .. सगमात किंचित् न्यूनः' पूर्णतया सार्थक है। प्रियजनो के समाचारो का महत्व उतना ही होता है, जितना उनके साक्षात्कार का होता है। सो इस प्रकार के सदेश-वाहन के अनेक भार अपने कंधो पर लिए मै बाहर निकला था; पर बाहर आने पर मुझे इस मेघदूती काम के स्थान पर कुछ और ही काम करना पड़ा।

अपने प्रांत के इस छोर से लेकर उस छोर तक जाना मेरे लिए आवश्यक हो गया था। असफल एव अन्यमनस्क जनता मे उत्साह-सचार के लिए गाधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम की ध्वनि जहा-तहा सुनाई दे रही थी। जनता को अनाथ और असहाय अवस्था मे समझकर क्षुद्र अधिकारियो द्वारा स्थान-स्थान पर किए जाने वाले अत्याचारो का आर्त्तस्वर भी निरंतर सुनाई देता जा रहा था। इसी प्रकार के कार्य के सम्बन्ध मे मै सतारा जिले के प्रशात रमणीय कृष्णा तीरवर्ती प्रदेश मे परिभ्रमण कर रहा था। कल्हाड के पवित्र नगर तथा पुण्यक्षेत्र मे कोयना नदी के प्रीति सगम के कारण उल्लसित और प्रोत्साहित हुई कृष्णा नदी उस गाव के समीप से होकर बह रही थी। जब मै गाव मे प्रविष्ट हुआ उस समय रात के दस बजे होगे। आकाश मे चन्द्रमा का प्रकाश फैला हुआ था। नदी की तीर-वर्ती झाडियो पर, नदी की धारा पर, नदी की रेती पर इस चन्द्र प्रकाश के जो विविध स्वरूप प्रतिफलित हो रहे थे, उन्हे देखकर चित्त आहलाद का अनुभव कर रहा था। मेरे मन मे प्रश्न उठा, क्या इस चादनी मे यथेच्छ विहार करने वाले इस ग्राम के निवासियो के चित्त मे भी इसी प्रकार का आह्लाद होगा ? अपने साथ के कार्यकर्त्ता से मैने इस गांव की सारी घटनाओ का इतिवृत्त पूछना आरम्भ किया।

जनता का उत्साह

मेरा यह पथ प्रदर्शक एक सोलह सत्रह वर्ष की उम्र का कार्यकर्त्ता था। उसने मार्क्स के ग्रन्थो का अध्ययन नही किया था, उसे काग्रेस के इतिहास की जानकारी नही थी, विश्व से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नो पर आजकल किस प्रकार का विचार-प्रवाह चल रहा है यह उसे मालूम नही था। आन्दोलन के आरम्भ काल मे सब कही जो एक तूफान-सा आ गया था, उसमे पाठशाला के जीवन से वह बाहर फेक दिया गया था। यद्यपि इस

पथ-प्रदर्शक की पढ़ाई-लिखाई केवल चार पांच कक्षाओं तक ही हुई थी और यद्यपि वह उम्र मे भी छोटा ही था, तो भी उसे देखकर हठात् बहिर्जी (शिवाजी के एक दूत) का स्मरण हो आता था। गत दो वर्षों मे वह कहां-कहा घूमा फिरा, क्या-क्या काम वह करता रहा, इत्यादि उपन्यास जैसे रहस्य भरे वृत्तात वह सुनाता जा रहा था, जिन्हे सुनकर मेरे शरीर के रोगटे खड़े हो आते थे। मैंने कहा,—राघू तेरी बात तो हो गई, अब अपने गांव की बातें सुना न !' उसने कहा—"जब हमारा मोर्चा ठन रहा था, उस समय गोलियो से इस गाव के सात व्यक्ति मारे गये, अनेक घायल हो गये, पचास-साठ आदमियो को सजाएं हुईं, और दो सौ से ज्यादा व्यक्तियो को 'डेटिन्यू' बनाकर सरकार इस गांव से पकड कर ले गई। सिर्फ दो दिन पहले ही की बात है, पुलिस वाले इस गाव के फ़रार हुये आदमियो को पकडने के लिए आये थे। बात यह है कि सरकार पूरी तरह से इस गाव के पीछे पडी हुई है।"

"इस गाव मे कितने घर हैं ?" मैंने पूछा।

"बडे और छोटे सब मिलाकर सौ के करीब घर है।" उसने उत्तर दिया। मेरे मन मे विचारो का एक मन्त्र-सा चलने लगा। इतने से गाव मे इतने लोगो को सज़ा हुई, इतनो को पकड लिया गया, इतनी बार पुलिस का छापा पडता है, तब भी जिनका धैर्य विगलित नही होता ऐसे ग्राम-बन्धुओ का दशन करने का अवसर मुझे प्राप्त हो रहा है, सचमुच यह तो बडा अहोभाग्य है।

हम गांव मे प्रविष्ट हुए। अनेक ग्रामवासी मेरी राह देख रहे थे। उनमे चौदह से लेकर अठारह वर्ष की उम्र के लोगो की ही अधिक भरमार थी। उनके साथ मै अपने ठहरने की जगह पर आया। ग्राम के बहुत-से-छोटे-बडे लोग मुझ से मिलने के लिए आए तथा उन्होने आठ अगस्त के बाद

को उस गाव की उल्लेखनीय घटनाये कह सुनाई । नेता के न रहते हुए पथ प्रदर्शक के न रहते हुए इन लोगो ने जो कुछ काम सहज स्फूर्ति के वश होकर किया वह जहा पूर्ण अहिंसात्मक था वहा वह उदात्त भी था। इसी उदात्त वृत्ति तथा भावनाओ का आविष्कार रचनात्मक कार्यक्रम के द्वारा इन गावो और इस प्रदेश मे दृष्टिगत हो रहा था। गाव वालो के आपस के बड़े-बडे झगडे गाववाले ही पचायतो की मार्फत तय कर लिया करते थे। कार्यकर्त्ताओ के सगठन के कारण सरकारी अधिकारियो पर जैसा एक प्रकार का आतंक-सा बैठ गया था, वैसा ही आतक गाव के गुण्डो, डाकुओ और लुटेरो आदि पर भी बैठ गया था। गाव की सफाई भी बहुत बढ़ गई थी। ग्रामवासी कार्यकर्त्तागण बडे अभिमानपूर्वक कहा करते थे कि ग्राम-राज्य का कार्य हम पूरा करके रहेगे। उनके सगठन कार्य की प्रतिक्रिया स्वरूप ही इस भाग मे पुलिस वालो की इतनी दोड-धूप मची हुई थी। मेरे मन मे अनायास ही सवाल पैदा हुआ, ये लोग अपने उद्योग मे कहा तक खरे उतरेगे।

गर्दन झुकेगी, पर

कृष्णा एवं गोदावरी के मध्यवर्ती दोआबे का यह प्रदेश वही था जहा औरंगजेब ने लगातार बीस बरस तक सिर पटका परन्तु वह इसे जीत न सका। महाराष्ट्र की राजधानी को कर्नाटक से जिजी नामक स्थान पर ले जाकर बीस बरस तक स्वातन्त्र्य-रक्षा के लिए अखड रूप से लडनेवाले हटी मरहटो के ये वशज भला कष्टो और यातनाओ के मुकाबले मे कभी हार मान सकते है? औरगजेब का अनुभव था कि 'जहां शत्रु रहते हैं, वहा उनका राज्य रहता है।' यही अनुभव स्वातन्त्र्य-प्राप्ति के लिए मृत्यु की कीमत चुकानेवाले, स्वदेश के लिए फकीरी को स्वीकार करने वाले लोगो का भी है। जुल्म और जबर्दस्ती के कारण गर्दन झुक भी जाय तो

भी उनके सम्मान-अभिमान मे कभी झुकाव नही आयेगा। हथकडियो से हाथ जकड़े जा सकते है, पर आशावाद को कौन जकड सकता है ! नागरिक स्वातन्त्र्य की अवस्था यह है कि उसे जितना ही कुचलने की कोशिश करो उतना ही उसके प्रति विद्यमान् आकर्षण की तीव्रता बढ़ जाती है। खुले आम चौराहो पर चलनेवाले आन्दोलन जुल्म जबर्दस्ती के कारण तहखानो तथा अरण्यवनो मे पहुँच जाते है। 'भासमान' व्यक्ति 'भूमिगत' हो जाते है। वह व्यक्ति जिसकी चर्चा हर एक की जीभ पर रहती है, अज्ञात हो जाता है। सर्वत्र संचरण करने वाला व्यक्ति फरार समझा जाता है। वृक्ष बोलने लग जाते है। मनुष्यो का मौन अधिक सार्थक हो जाता है। एक चीटी जिस प्रकार दूसरी चीटी से मिलती है और किसी प्रकार का प्रस्ताव अथवा प्रस्तावना न करते हुए, चुपचाप चीनी कहा है यह बताती जाती है, उसी प्रकार यह स्वातन्त्र्य की 'सीटी' अरण्यबनो मे 'सुनने वालो' को ही सुनाई देती है, सदेश देती है। सदेश पहुँचाने का काम जड और चेतन दोनो ही करने लगते है। एतद्विषयक जो बाते अनेक राष्ट्रो के इतिहास मे हमने पढ़ी थी, वे ही आज साक्षात रूप से इन आखो के सामने से गुजर रही थी और मन मे यह विश्वास भी दृढ़ होता जाता था कि इतिहास का नियम कभी असत्य सिद्ध नही होगा।

इसी बीच मेरे पथ-प्रदर्शक ने मुझे आज्ञा दी—"अब रामजी बुवा के पास जाना चाहिए।"

मैने पूछा—"कौन-से रामजी बुवा ?"

उसने बताया कि रामजी बुवा उसके गाव के एक बढई है। दो बरस पहले उनका इकलौता लडका 'ग्यानू' मोर्चे मे गोली का शिकार बनकर मर गया था, अतः उनसे मुझको अवश्य मिलना चाहिये। मैने उसकी यह प्रार्थना तत्काल मजूर की और पाच-दस मिनटो मे ही हम

उनके एक बडे से मकान मे पहुँच गये। जेल से छूटकर बाहर आते समय जिस प्रकार के सदेशवाहन का भार मुझ पर था यह वस्तु और यह प्रसग उससे भिन्न था। वृद्धावस्था मे अपने इकलौते पुत्र से हाथ धो बैठे हुए एक व्यक्ति से मुझे मिलना था। मै विचार करने लगा कि उससे क्या कहा जाय? किस भाषा मे, किन शब्दो मे उसको ढाढस बधाया जाय इसका निश्चय ही नही हो पा रहा था। जिसने अपने यौवनकाल मे अनेक व्यक्तियो के घर खडे किये होगे, उसी का घर आज दैव ने ढहा दिया था। यह विश्वकर्मा (बढई को विश्वकर्मा कहते है) आज पूर्णतया परास्त हो चुका था। जिस प्रकार बसूले से छीली-तराशी गई ऊबड़-खाबड लकडी को उमेदी गई यातना के परिमार्जन के लिए बारीक रंद से चिकना बनाकर सान्त्वना दी जाती है, उसी प्रकार दैव ने भी उस बढ़ई के बारे मे किया था, अर्थात् गोली-काड मे लड़के की मृत्यु हो जाने के पश्चात् एक-दो महीने मे ही उसका पोता पैदा हो गया था।

ग्यानू बच्चा बन गया है

बरामदे मे एक कमली बिछाकर उस पर वह वृद्ध सज्जन बैठे हुए थे। पास मे दो-तीन और सज्जन बैठे हुए थे। मैने जाते ही उन्हे अभि-वादन किया और मेरे मना करने पर भी उस वृद्ध ने मेरे पैरो पर अपना सिर रख दिया। क्या बोलें, यह सूझता ही नही था। सारा वक्तृत्व पक्षा-घात-पीडित व्यक्ति के अगो की भाति निष्क्रिय हो गया था। प्रतिभा कुंठित हो गई थी। संकटकाल मे जिस प्रकार मित्र साथ छोड देते हैं उसी प्रकार शब्द भी जिह्वा का साथ छोड़ गये। जैसे तैसे प्रयत्न करते हुए मैंने कहा—"ग्यानू बड़ा खुशनसीब था, इस प्रकार की मृत्यु तो मागने से भी नही मिलती।" मेरा वाक्य अभी समाप्त भी नही हो पाया था कि पास ही मे बैठे हुए दो बरस के अपने पोते को और नजदीक

लेते हुए वह वृद्ध बोला—"नही, नही, ग्यानू मरा नही। ग्यानू बच्चा बन गया है।" और ऐसा कहकर उसने उस छोटे-से अर्भक को मेरे पैरों पर रख दिया। मैं और भी विभ्रम मे पड गया। "ग्यानू मरा नही, ग्यानू बच्चा बन गया है।" इसका सम्पूर्ण अथ जब मेरे ध्यान मे आया तब मुझे अत्यन्त कृतार्थता अनुभव हुई। जो आत्मज्ञान प्रवचन से उपलब्ध नहीं होता, केवल बहुश्रुत होने से उपलब्ध नही होता, वह इस वृद्ध को कहा से प्राप्त हो गया? ग्यानू मरा नहीं, वह अमर है यह तत्त्वज्ञान इस निरक्षर ने कैसे जान लिया? आत्मा का अमरत्व मानवीय जीवन-धारा की अखंडता मे है यह इसने कैसे पहचाना? 'आत्मा वै पुत्र नामासि' इस वेदांतगत रहस्य का इसे कैसे पता चला? दुःखप्रद घटनाओं का उत्साहवर्द्धक अर्थ निकालकर उत्कृष्ट स्वरूप की मनःशाति कर लेने की कला इसे कैसे हस्तगत हुई? 'ग्यानू बच्चा बन गया है' इस वाक्य द्वारा आशावादिता का एवं प्रयत्नो की अमरता का एतादृश नितॉत सुन्दर रीति से प्रदर्शन किस साहित्यिक ने उसे सिखाया?

पौरस्त्य संस्कृति की मूर्ति

स्वातन्त्र्य की प्राप्ति के लिए किया गया प्रयत्न—किंवा किसी भी श्रेष्ठ आदर्श को प्राप्त करने के लिए किया गया प्रयत्न—अनाथ अवस्था मे नही मरता, नही नष्ट होता, यही उसके कहने का अभिप्राय था न? एक ज्योति से दूसरी ज्योति के प्रज्ज्वलित हो जाने पर दोनो के प्रकाश मे अन्तर कैसे रहेगा? इसके विपरीत 'अधिक प्रज्ज्वलन का परिणाम अधिक प्रकाश होता है, यही उसका अर्थ है। नई पीढी का अभिप्राय है प्रयत्नो के लिए अधिक काल, अधिक क्षेत्र तथा अधिक आशा। जिसके लिए मृत्यु एक क्षुद्र-सी वस्तु है, एक क्षुद्र-सी घटना है, जिसने मृत्यु को एक अनित्य अनुभूति मानकर नित्य एवं निरन्तर रहने वाली अनुभूति को जीवन माना

है, जिसने जीवन का अर्थ माना है आशा, वही सच्चा समदर्शी नही क्या ? स्थितप्रज्ञ की क्या परिभाषा है, स्थितप्रज्ञ क्या खाता है, कैसे रहता है, कैसे बोलता है इसका नित्य विवेचन हमारे मे से अनेक लोग अहर्निश किया करते है। परन्तु वैसा (स्थितप्रज्ञ) व्यक्ति मुझे आज साक्षात् दिखाई दिया और मै तो कहता हूँ, जिस समाज मे इस प्रकार का एक भी व्यक्ति मौजूद है वह समाज धन्य है, उसका भविष्य उज्ज्वल है। उपनिषदो की सच्ची सस्कृति मेरे समक्ष सदेह रूप मे उपस्थित थी। पौरस्त्य सस्कृति का यह एक मूर्त्तिमान दृश्य था। यह तथा ऐसे अनन्त विचार मेरे मन मे उठ रहे थे। इसी बीच मेरे उस तरुण कार्यकर्ता ने सभा का समय हो जाने की सूचना देते हुए मुझे उस दिव्य स्वप्नावस्था से जगाया। रामजी बुवा के पैरो पर अक्षरशः अपना मस्तक रखकर मैं वहा से बाहर निकला। मेरे मस्तिष्क मे "ग्यानू मरा नही, वह बच्चा बन गया है" यह वाक्य लगातार चक्कर काट रहा था और आज जब मै यह लिख रहा हूँ मेरी पुनः यही अवस्था हो रही है और वैसा ही आनन्द अनुभव हो रहा है जैसा कि उसके प्रथम बार श्रवण करते समय हुआ था। अपने उस आनन्द का एक अंश भी यदि मै अपने पाठको तक पहुँचा सका तो मै समझूंगा कि बडी भारी कमाई मैने कर ली।

डिकसाल की धूल में ?

'न सेकण्ड क्लास का टिकट है और न इंटर का।' टिकट बाबू के इन शब्दों को सुनते ही मेरे मुँह से अनायास निकल गया— "बेचारे लोग निराश हो जायगे।" टिकट बाबू ने यह सुन लिया। क्या हुआ कौन जाने, उसने मुझे फिर खिड़की के समीप बुलाया और कहा, "माफ़ कीजिए, इंटर का एकाध टिकट होगा, ऐसा प्रतीत होता है। पांच-छः मिनट मे मैं आपको बताऊगा।" मैं पूना स्टेशन पर सेकंड क्लास के टिकटघर की खिड़की के सामने, कधे पर नई फैशन की झोली डाले, परीक्षाफल की बाट जोहनेवाले विद्यार्थी की भाति खड़ा रहा।

अकलूज में एक नई पद्धति की शादी होने जा रही थी, मुझे उसका 'अध्यक्ष' बनने के लिए जाना था। रात की मेल ही सबसे अधिक सुविधा वाली गाडी थी। मेल में डिकसाल का टिकट नही मिल सकता था अतः सौ मील आगे के कुर्डुवाडी नामक जंकशन का टिकट लेने की कोशिश करना जरूरी होगया। समाज में विद्यमान विषमता की भांति यात्रा का यह श्रेणी-विभाजन एवं विषमता तो सम्प्रति और भी अधिक असह्य हो उठी है।

टिकट बाबू की कहानी

जेल से छूटे हुए अनेक कार्यकर्त्ता ग्रामसुधार कार्य की इच्छा से गावो में जाकर बस गये है। अनेक स्थानो पर उन्होने नई पद्धति की शादिया रचाना भी शुरू कर दिया है। ऐसी ही एक शादी का पुरोहितपन एक भी मंत्र और विधि न जाननेवाले वेदोनारायण के पल्ले आ पड़ा था, और इसी कार्य के लिए टिकट लेने की यह उछल-कूद हो रही थी। उन पाच मिनटो मे न जाने कितने प्रकार के विचार मस्तिष्क में होकर गुजर गये। उसी समय शोलापुर के कुछ लोग टिकट की आशा से वहाँ आ पहुचे और उन्होने मुझे नाम लेकर पुकारा। नामोच्चारण से स्वभावतः टिकट बाबू पर कुछ प्रभाव पड़ा और उसने मुझे तत्काल अपने पास बुलाया तथा इटर का टिकट पकड़ा दिया।

उसकी इस भद्रता के लिये मुझे थोड़ी कीमत भी चुकानी पड़ी। दस मिनट तक वह अपनी नौकरी का सारा कच्चा चिट्ठा सुनाता रहा। २३ वर्ष तक वह अनेक ए० टी० एस० और डी० टी० एस० (जिसका अर्थ मुझे बिलकुल नही मालूम) के साथ किस प्रकार लड़ा, यह उसने बताया। उसका भाई एम० ए० होकर भी बेकार है, और उसने नॉन-मैट्रिक होते हुए भी पूना के एक उपनगर मे बगला बनवाया है। उसके लड़को ने सन् '४२ के आदोलन मे किस प्रकार उसकी बात नही मानी। उसकी कहानी मे ये बातें सम्मिलित थीं। मुझे भय लगने लगा कि अब वह अपना महाभारत पूरा किये बिना चैन न लेगा। मै इससे अपना पिड छुड़ाने का उपाय सोचने लगा। इतने में रणागण पर जानेवाले सैनिकों की हलचल शुरू हुई और उसका फ़ायदा उठाकर मै वहा से खिसक गया। टिकट मिल जाय और वह भी एक भी पैसा अधिक खर्च किये बिना, तो इस आनन्द को पुत्रजन्मोत्सव के आनन्द के समान ही समझना चाहिए।

आखिरी गाड़ी भी आगई

गाडी के आने मे अभी डेढ घण्टे की देर थी। टिकटघर के समीप दिखाई देने वाली सारी आकृतिया प्लेटफार्म पर दीखने लगी। जादूगर की टोपी में से जिस प्रकार चीज बाहर निकल आती है, उसी प्रकार बाकी न रहने पर भी अनेक व्यक्तियो को टिकट मिल गये, यह देखकर थोड़ा आनन्द हुआ और थोडी चिन्ता भी हुई। आखिर ये सारे लोग डिब्बे मे भीड मचाये बिना न रहेगे।

डेढ़ घटे इन्तजार करने के पश्चात् आखिर गाडी भी आ ही पहुँची। कुली ने मुझ से कहा, 'आप डिब्बे के भीतर चले जाइये मै आपका बक्स आपको पकडा दूंगा।' ज्योही गाडी थमी, उतरने वालो और चढ़ने वालो के बीच द्वन्द्व शुरू हो गया। जो काम तरीके से किया जाने पर दो मिनटों मे खत्म हो गया होता, वह दस मिनट मे भी नही हो पाया। रावण के दरबार मे अगद ने जिस प्रकार गवाक्ष के द्वार से प्रवेश किया था, मैं भी उसी प्रकार डिब्बे मे प्रविष्ट होकर बैठे हुए यात्रियो की जाघो पर धम्म से गिर पड़ा। मेरे इस पराक्रम से आस-पास के चार-पाच आदमियो को तकलीफ़ तो ज़रूर ही हुई होगी। यह भी सम्भव था कि वे मुझ पर टूट पड़ते, किन्तु डिब्बे की सारी ही खिडकियाँ प्रवेश-द्वार बन गई थी, और फिर यह आजकल रोज़मर्रा की बात हो गई है, अतः किसी ने उसे बहुत ज्यादा बुरा महसूस नहीं किया। सोडावाटर के बक्से मे जिस तरह सोडावाटर की बोतल ठूसकर भर दी जाती है, उसी प्रकार ३६ आदमियो के उस छोटे से डिब्बे मे ७० से भी ज्यादा आदमी हो गये थे। जो अन्दर आ गये थे वे अन्दर वालो से एका करके नये आने वालो के साथ लड़-झगड रहे थे। गाडी के हिलते ही तीर की तरह एक तरुण व्यापारी ने डिब्बे मे प्रवेश किया। उसके साथ लड़ा जाय या उसकी दक्षता की

तारीफ़ की जाय, इसका अभी फैसला भी नही हो पाया था कि गाड़ी का वेग बढ गया और अन्दर की जनगगा शात हो गई।

डिब्बे में युद्ध

तथापि इस क्षण भर के प्रशात वातावरण के पीछे एक उथल-पुथल भी छिपी हुई थी। बर्थों पर कुछ व्यक्ति सोये पड़े थे। बैंचो के मध्य मे तथा दरवाजे के सामने सामान अस्तव्यस्त रूप मे पडा हुआ था। इधर-उधर भी कुछ लोग अस्तव्यस्त अवस्था मे पडे सो रहे थे। उन्हे देखकर ऐसा मालूम होता था कि कोई ज़ोर का भूचाल आया है जिसके कारण सब कुछ अस्तव्यस्त हो गया है।

कुछ लोग टेढ़े-मेढे बैठे हुए थे, कुछ खड़े हुए थे। कुछ लोगों को खड़े रहने के लिए भी जगह नहीं थी। उनमे से बहुतेरे सैनिक थे। एक ने ऊपर सोये हुए एक सज्जन को हिलाकर बैठने के लिए जगह देने को कहा। उक्त सज्जन मद्रासी थे। उन्होंने उत्तर दिया, यह जगह बैठने के लिए नहीं, सोने के लिए है। सैनिक ने डिब्बे को युद्धक्षेत्र का रूप देकर ऊपर के दुश्मन को तत्काल नीचे खीच लिया। मद्रासी यात्री ने डिब्बे में मौजूद टिकट-चैकर से चिल्लाकर कहा कि इस सिपाही ने मुझ पर हाथ उठाया है, मेरे साथ मारपीट की है।

'आपकी आकृति से तो ऐसा नही मालूम होता।' चैकर ने मुह बना कर उत्तर दिया।

डिब्बे मे बैठे हुए सारे यात्री ठहाका मारकर हँस उठे। सिपाही ने उस सरकारी क्लर्क को धता बताकर आखिर अपने लिए जगह बना ही ली।

मैं अभी तक व्यास महर्षि के समान दोनो हाथ ऊपर किये खड़ा ही था। मेरी बात कोई सुनेगा, ऐसी उम्मीद भी नही थी। तथापि मुझे उस स्थिति

में देखने वाले अनेक थे, और प्रसिद्धि तथा नेतागिरी का जो फ़ायदा होना चाहिए सो हुआ।

रहा मारवाड़ी ही !

पूना मे मेरे साथ कांग्रेस में काम करने वाले एक सज्जन गाड़ी मे बैठे हुए थे। उनका रोजगार व्यापार था। अतः उनका विश्वास था कि स्वराज्य की अपेक्षा सम्पत्ति श्रेष्ठ है। डिब्बे के एक कोने में मुझे पहचानने वाले एक और सज्जन बैठे हुए थे। उन्होंने नाम लेकर मुझे पुकारा तथा अधिकार की हुई खूब खुली जगह मुझे बैठने के लिए दे दी। हम तीनों के बैठते ही युद्ध तथा आन्दोलन सम्बन्धी चर्चायें छिड गईं।

इसी बीच डिब्बे मे बैठे हुए एक मारवाड़ी सज्जन की 'रोमाच-कथा' सुनने का मौका हाथ लगा। उसके पास टिकट नही था, इस कारण टिकट चैकर कुडूंवाडी तक का दुगना किराया माग रहा था। मारवाड़ी सज्जन का कहना था कि 'हम दो भाई, एक बम्बइ को तथा दूसरा कुडूं-वाडी को जाने के इरादे से चले। हडबड़ी मे टिकट बदल गये। मेरे पास तो बम्बई का टिकट आ गया और मेरे भाई के पास कुडूंवाड़ी का टिकट चला गया।' टिकट उसने लिया था। बम्बई का टिकट उसके कथन की सत्यता को प्रमाणित कर रहा था। उसके पास पूरे पैसे नहीं थे। जितने थे उतने देने के लिए वह तैयार था। उसका जाना बहुत ज़रूरी था। उसे धमकी दी गई कि दौड तक के पूरे पैसे न दिये तो पुलिस के हाथ मे उसे सौप दिया जायगा। मारवाडी सज्जन ने स्थिति को पहचानते हुए कहा कि कुडूंवाडी पहुचते ही मै पैसे दे दूगा। मैने बीच-बचाव करने का यत्न किया। पर न्याय और क़ानून के अन्तर का ज्ञान टिकट-चैकर की बुद्धि से परे की बात थी। और मेरे मध्यस्थ बनने का इनाम मारवाड़ी सज्जन ने कम पड़ने वाले पैसो को मुझी से माग कर दिया।

मैंने तत्काल वे पैसे दे दिये। उन सज्जन का नाम और पता भी मैंने नहीं पूछा। जब डिकसाल स्टेशन पर मैं उतरा, उस समय भी नही पूछा। मैंने सोचा, जिसको देना होगा वह तो देगा ही, जिसे नही देना वह नाम और पता पूछने पर भी नही देगा। अपने पास की सम्पत्ति तो एक धरोहरमात्र है।' महात्मा गाधी के इस सिद्धात पर आचरण करने का अवसर मिलने के कारण मै कदाचित् उसी के आनन्द मे निमग्न था।

यह बताने से मुझे आनन्द होता है कि उक्त घटना के तीन सप्ताह बाद वह रकम मनीआर्डर द्वारा मुझे मिल गई। तथापि घर की कोषाध्यक्ष इस घटना को सुनकर मेरे इस कृत्य को 'भोलापन' बताये बगैर न रह सकी।

म्युनिसिपैलिटी की 'सुव्यवस्था'

डि॰साल स्टेशन पर एक ही दिया था और वह भी प्रकाश पहुचाने के स्थान पर चारों ओर फैले अन्धकार को ही अधिक स्पष्ट कर रहा था। प्लेटफार्म पर इन्तजाम के वास्ते भेजा हुआ स्वयंसेवक उपस्थित था। रात के ३ बज गये थे। अकलूज की मोटर के छूटने मे अभी तीन घण्टे शेष थे। स्टेशन मास्टर से पूछने पर पता चला कि दूसरे दर्जे के मुसाफिरो के ठहरने के लिए कोई इन्तजाम नही है। तीसरे दर्जे के मुसाफिरखाने में अंधेरे मे अनेक लोग सोये पडे थे।

स्टेशन मास्टर ने आग्रहपूर्वक निवेदन किया कि स्टेशन की बेंच पर ही मैं बची-खुची रात गुजारू पर स्वयसेवक ने बताया कि मोटर स्टैंड के समीप इन्तजाम अच्छा है अतएव हम दोनो स्टेशन की सीमा से बाहर स्टैंड के पास आये।

चांदनी में मन की दौड़

कडाके की सर्दी थी। आकाश मे शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा सर्दी को

और भी बढा रहा था। आस-पास की फौजी लारिया हाथी के समान लग रही थी। रास्ते की बगल मे जो खुली जगह थी, वही मोटर स्टैंड था। स्वयंसेवक इस भरोसे में था कि बची-खुची रात मोटर में ही आराम से बिताई जा सकेगी, पर हमारे साथ के अन्य अनेक भी इसी भरोसे पर मोटर की ओर आ रहे थे। ऐसी हालत मे मैने यही निश्चय किया कि मोटर में बैठने की अपेक्षा बाहर चांदनी में ही रात बिताई जाय। किम्बहुना, यह कहना अधिक उचित होगा कि, मुझे वैसा निश्चय करने के लिए विवश होना पडा।

कुछ ही फासले पर एक प्रख्यात पूजीपति का गेस्ट-हाउस भी था और वहा मै गया होता तो ठहरने का सुरक्षित इन्तजाम भी हो गया होता, पर ऐसी सुविधा के सामने अभिमान झुकने के लिए तैयार नही हुआ। फलतः बची-खुची रात अक्षरशः धूल मे बितानी पड़ी।

मेरे सहयात्रियो ने धूल मे अपनी कमलिया बिछाना शुरू कर दिया। और मुझे क्या करना चाहिए, इसका मैं अभी विचार ही कर रहा था। नीद बुरी तरह सता रही थी, पर धूल मे बिछौना डालने के लिए मन तैयार नहीं हो रहा था। समय-असमय, स्वर-अस्वर मे मातृभूमि के गीत गाने वाला मै, आज अपनी मातृ-भूमि के अक मे लेटने के लिए तैयार न था!

मैं खडा-खडा सोचने लगा, मेरे पडौस मे कमली पर लेटते ही नींद—गहरी नींद—का आस्वादन करने वाले लोगो के मन मे भी क्या मेरे जैसे ही विचार आये थे? और यदि नही आये तो क्यो नही आये? जिनके श्रम पर सारा जगत पल रहा है, उनके हिस्से मे सुख का एक छोटा-सा अश भी न आये! यात्रा की सारी सुख-सुविधाओं के साधन कतिपय विनिक्षित (खास) लोगो ही के लिए हैं क्या? और इसी के साथ, इतनी तीव्र विषमता होते हुए भी उसकी ज्ञानानुभूति बहुजनसमाज में क्यों नहीं

होती ! एक आदमी मर-मरकर मेहनत करे और दूसरा उसका आनन्द लूटे, यह कहां का न्याय है ? जिस समाज-व्यवस्था में इस अन्याय को स्थान है, वह क्यो बनी रहे ? मेरी आखो के सामने उन खेतिहरों के स्मृति-चित्र आ खडे हुए जो कहा करते थे, "दादा, हमारे दैव ही में कष्ट लिखा है।" सामाजिक अन्याय को दैव का हवाला देकर सम्पत्ति-शाली और संचयवादी वर्ग ने अपना काम साधने का यत्न किया है।

इस प्रकार धूल मे बैठे हुए मेरी विचार-मालिका चालू थी, इसी समय पास के होटल से आवाज़ आई, 'चाय किसे चाहिए ?' और मै उस स्थान पर चला गया।

इस प्रदेश मे चीनी के कारखाने हैं, पर सामने आई गुड़ की ही चाय ! ठीक है जहाँ चीज उगती या बनती है वहाँ बिकती नहीं। इस सिद्धाँत की प्रतीति एक अन्य ही रूप में हुई। ६ बज गये थे और मोटर के चलने का समय भी हो आया था, अतः हम मोटर मे जा बैठे। मोटर एजेंट ने अपने रोज के नियम से अनाप-शनाप बाते बोलते हुए भेड़ो की तरह यात्रियों को ठूंसना शुरू किया। बेचारे ग़रीब यात्री चुपचाप सुनते न तो क्या करते, उन्हे अपने स्थानो पर जाने की जल्दी जो थी ! पर मुझसे उसकी यह बकवास न सुनी गई। मैंने उस एजेंट से कह दिया कि यदि तूने अब और ज़्यादा यात्री इसमे बैठाये तो मैं मोटर को यहा से नही हिलने दूँगा।

उसने जवाब दिया, 'ऐसे खादी टोपी वाले मैंने बहुत देखे हैं।'

'पर मुझ जैसा तुझे नही दीखा होगा। एक तो सारी रात तूने इन लोगो को धूल में बैठाये रखा, उनके लिए कोई इतजाम नही किया और अब कायदे और कानून के खिलाफ काम करता है; मैं यह सब नही चलने दूँगा।'

मेरे ऐसा कहते ही यात्रियों का स्वाभिमान जाग उठा और वे मेरा पक्ष लेकर उसका विरोध करने लगे। अन्त में मोटर ड्राइवर ने जब अन्दर की बत्ती जलाकर मुझे ग़ौर से देखा तब चुपके से एजेंट के कान में जाकर कुछ कहा और मोटर चालू करदी।

धूल में सुवर्ण रज

अंधेरा शनैः-शनैः नास्तिप्रायः हो रहा था; सूर्य शनैः-शनैः ऊपर आ रहा था। उसे देखकर मेरे मन मे विचार आया, यदि इसी तरह जनता के अज्ञानरूपी अंधेरे का नाश हो जाय तो उन्नति का सूर्योदय हुए बिना नहीं रहेगा। धूल में यदि तीन घंटे तक मैं न बैठा होता, स्टेशन मास्टर के कहने के मुताबिक स्टेशन की बैंच पर सोकर मैंने वह रात गुज़ारी होती, तो जो सुन्दर विचार मेरे मस्तिष्क में आये वे न आये होते। इस धूल में सचमुच ही मुझे स्वर्ण-रज की प्राप्ति हुई और यह मातृभूमि सचमुच ही स्वर्ण की खान है।

क्या यही अवंतिकापुरी है ?

ठीक २४ वर्ष के पश्चात् मैं इन्दौर को जा रहा था। दिल्ली और शिमले की ओर जाते समय अनेक बार रतलाम होकर जाने का मौका आता था, उस समय अनेक बार मन मे आता था कि फिर से इदौर और नीमच आदि स्थानो के दर्शन करके अपनी पुरानी स्मृतियो को जागरित करूं, पर वह सम्भव न हो पाता था। एक ओर इस बात का डर था कि दिल्ली में यदि ठीक समय पर नहीं पहुचा तो हर्ज होगा, और दूसरी ओर इस बात का अभिमान था कि पूना मे अपने सिवाय और दूसरा है ही कौन !

पहिये के ऊपर बैठी हुई मक्खी को यह लगता है कि पहिया उसी के बल पर फिर रहा है। मेरा यह अभिमान भी इसी प्रकार का था। तथापि इतनी बात सही है कि १६२० के बाद अर्थात् हमारे ब्रह्मचारी संघ के आखिरी सभासद् की 'विकेट' पड़ने के पश्चात् मैं इस प्रदेश में नहीं गया। यो हिन्दुस्तान मेरा मातृदेश है, तथापि मेरा प्रत्यक्ष जन्म मेवाड और मालवा की सीमा बनी हुई चंबल नद के तट पर मल्हारगढ़ नामक स्थान

पर हुआ था। अतः इस प्रदेश के साथ मेरी ममता है। इस प्रदेश के प्रति विद्यमान आत्मीयता भले ही किसी की दृष्टि मे संकुचित हो, पर मेरे लिए इसकी सार्थकता है।

मालवा भारतवर्ष का धान्यागार समझा जाता है और मेवाड वीरप्रसू भूमि है। ऐसे स्थान के प्रति भला आत्मीयता, ममता एवं गौरवानुभूति क्यो न हो ! चबल नदी के समीप एक बारी है और उस बारी मे से होकर ही मेवाड में जाना होता है। इस प्रदेश में "दक्खन की कमाई और हरकिया मे गमाई" ऐसी कहावत मशहूर है। इस हरकिया की बारी मे से दक्षिण में जाकर खूब पैसा कमाने वाले मारवाडी मारवाड की ओर लौटा करते थे और उस समय अधिकाश मारवाडी लुटेरो के शिकार बन जाते थे। वह जमाना अब बदल गया है। तथापि यह ऐतिहासिक परंपरा सम्पूर्णतया नष्ट हो गई हो, ऐसा सरकारी रिपोर्ट पढने से नही मालूम पडता।

हमारे पूने के (पुनाहरे) क संकेत !

इसी हरकिया की बारी से दो मील की दूरी पर विद्यमान मल्हारगढ़ नामक गाव मे अस्मदादिक का (हमारा) जन्म हुआ था; अतः तद्देशीय लोक-कथाओ के विषय में अभिरुचि थी—आज भी वह विद्यमान है। मैंने उस प्रकार का कोई पराक्रम नही किया था। गब्बारो की वाडी के रहने वाले सारे जेबकतरे नही होते। उसी प्रकार पूना के सभी नागरिक नीति-विचक्षण नही होते। तथापि किसी स्थान के प्रति ममत्व, उसकी भलाई और बुराई दोनो ही बातो के बारे में रहे तो उसमें कौन बुराई है ! यो तो दक्षिण की कमाई को बारी मे लूटने के बजाय दक्षिण की ओर से मैं जो कमाई लेकर आया था वह मेरे बाल-मित्रो के लिए गौरव करने की ही वस्तु थी।

हा, मैं कोई एकदम सामान्य यात्री के रूप मे नही जा रहा था। मध्य भारत विद्यार्थी-परिषद् के एक मनोनीत अध्यक्ष के रूप मे जा रहा था और मैं दक्षिण से जो कमाई करके लाया था वह ऐसी वस्तु नहीं थी, जिसे लूटा जा सके। फिर वह कमाई भी लोगो के समझने पर थी। कोई चाहे तो उसे कमाई समझ सकता था। न चाहे तो नही। इसलिए उस कमाई के बारे मे कोई विशेष आस्था अथवा आत्मीयता भी नही थी।

पूना से चलते समय मैने अपनी जन्म-भूमि के दर्शन करने का निश्चय कर लिया था। गाडियो की असुविधाओ के कारण तथा टिकटो की अड-चनो के कारण एक दिन पहिले ही मैं बम्बई से चल पड़ा था। रतलाम में एक दिन रहने के विचार से उतरा। मैं चाहता तो तत्काल इन्दौर जा सकता था। पर अध्यक्ष को निर्धारित समय से कुछ देरी करके ही पहुचना चाहिए, ऐसा पुण्य पत्तनीय संकेत है और वह सदा ठीक ही बैठता है, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास था। इसलिये मैं नही गया। और सच्ची बात तो यह है कि यदि मैं २४ घटे पहले ही पहुच गया होता तो परिषद् के सचालको का रस-भंग हो गया होता और स्टेशन पर उन्हें मुझे ढूढना पडता। अतः मैंने रतलाम स्टेशन पर ही ये २४ घंटे गुजारने की सोची। परिषद् के लिए जो भाषण लिखना था उसका साराश मैंने सेकण्ड क्लास के वेटिंग रूम मे बैठकर लिखा और बम्बई भेज दिया। बाकी समय कैसे गुजारा जाय, यह मैं सोचने लगा।

इस बीच एक फ़ौजी स्पेशलगाडी आई और पुलिस वालो ने हलके हाथो से प्लेटफ़ार्म पर ठहरे हुए यात्रियो को स्टेशन से बाहर खदेड़ना शुरू किया। हमेशा की आदत से लाचार होकर मैंने इस मामले में भी अपनी चोच लडाई। स्टेशन-मास्टर तक जाने की नौबत आई। उसने पुलिस

वालो को पास बुलाया और उन्हे ताकीद की कि वे ज़रा अधिक सभ्यता से पेश आया करें।

'शारदा मंदिर' मे प्रवेश

रेलगाड़ी का टाइम-टेबल देखने से पता चला कि हरकिया की बारी देखकर समय पर वापस आना सम्भव नही। अतः मैंने सोचा, चलो रतलाम गाँव मे एक चक्कर मार आयें। कुछ ही फासले पर एक इमारत नजर आई, जिस पर 'महाराष्ट्र शारदा मदिर' का बोर्ड लगा हुआ था। उस इमारत मे उस वक्त कोई भी नही था। आस-पास भी कोई दिखाई नही दिया। गाँव मे पहुच कर कुछ आदमियो से मुलाकात की। देशी राज्यों मे होने वाले अत्याचारो की कथा सुनी। महाराष्ट्र शारदा मदिर के सम्बन्ध मे मन मे जो एक कौतूहल पैदा हो गया था, वह मुझे चैन नहीं लेने दे रहा था। अतः लौटते समय इस मदिर के दरवाजे के सामने मैं एक घटे तक खडा रहा। अन्त मे मेरी यह साधना फल लाई। पास ही मे रहने वाले एक दक्षिणी (महाराष्ट्रीय) छोटे बच्चे ने बताया कि बृहस्पतिवार को ९ बजे यहाँ भजन-कीर्तन होता है, आज गुरुवार है; अतः यदि आप आज आये तो अच्छा होगा। बचा-खुचा नौ बजे तक का वक्त शहर मे इधर-उधर फिरने मे, दही-बडे खाने में बिताया। नौ बजे फिर शारदा-मंदिर पहुचा। लगभग १० बजे एक आदमी ने दरवाजा खोला। बिजली जलाई और उस प्रकाश में मैंने इस मंदिर का स्वरूप देखा। सब कहीं धूल! एक टूटी-फूटी अलमारी मे कुछ पुस्तकें दिखाई दी। एक ओर हारमोनियम, तबला और करताल पड़े दिखाई दिये। दो आदमी और आये। हम तीनो ने मिलकर मंदिर की सफाई की। मतलब, इधर की धूल उधर कर दी। दरियाँ आदि बिछाई। तीन और आदमी आये। प्रायः सब रेलवे मे नौकर थे। मैंने अपना नाम तो नही बताया पर इतना बताया

कि मैं पूना की तरफ का हू। एक ने अगल-बगल मे धीमे से गाधी जी के बारे मे सवाल किया दूसरे ने बहुत ही धीमी आवाज मे पूना के कुछ व्यक्तियो के बारे मे पूछा। उन व्यक्तियों मे से एक मै भी था। पर मैने कुछ भी पता नही चलने दिया। भजन के कार्यक्रम के बारे मे मैं उत्कठित था। ११ बजे भजन शुरू हुआ। एक प्रौढ व्यक्ति ने एकदंता, वक्रतुंडा, बुद्धिच्या नायका, गाना—हाँ, उसे गाना ही कहना पड़ेगा—शुरू किया वह पहले बोलता और सब उसके पीछे बोलते। यही चलता रहा। दूसरा कोई भजन शुरू होगा ऐसा प्रतीत नही हुआ और इस सुरीले भजन को और अधिक देर तक सुनने के लिये आवश्यक धैर्य मुझमे बच नही रहा था। १२ बज गये थे। अतः अपना यह शारदा-मदिर का अक समाप्त करके मै लौट आया। प्रतिदिन यह कार्यक्रम नही चलता, इस कारण शारदा अवश्य ही इन लोगो के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती होगी। नीद में भी इस वक्रतुंड ने मुझे चैन नही लेने दी। गाडी से बाहर भी अहोरात्र जागरण करना पडा और उसका पूरा पुण्य भी मेरे हाथ नही लगा।

आखिरकार जाति पर ही आये

प्रभात होते ही इन्दौर की गाडी मे जा बैठा। मेरे स्वागत के लिए आये हुए कुछ विद्यार्थी मित्र भी वहाँ मिले। हाडी मे तैयार की हुई चाय पीते हुए, वास्तविक ग्रामोद्योग को प्रोत्साहन देते हुए, इन्दौर की परिस्थिति की जानकारी प्राप्त करता जा रहा था। ठीक समय इन्दौर पहुँचा। तीन दिन का मुकाम रहा। वहा का अनुभव स्वतन्त्र रूप से अन्यत्र आने ही वाला है; अतः यहा लिखने की आवश्यकता नही। इन्दौर मे रहते समय उज्जयिनी के कार्य-कर्त्ताओ की ओर से भी आमंत्रण आया। फलस्वरूप मै उज्जयिनी के लिए चल पडा। मेरे साथ कुछ विद्यार्थी कार्यकर्त्ता भी थे। ३० वर्षों के पश्चात् मैं उज्जयिनी की ओर

जा रहा था। पहले-पहल मैं अपने एक सम्बन्धी के साथ यहा आया था; उस समय मैं आठ या नौ बरस का रहा हूँगा। उस समय की याद सिर्फ कड़ाके के जाड़े की ही रह गई है। दूसरी बार जब मैं गया तब मैं १६ बरस का था; उन दिनों मै कालेज में पढ़ता था। उस सयय मेरे साथ एक सरकारी अफसर थे। उस दफा स्टेशन पर उतरते ही बाहर के एक होटल मे हम गये और खाने के इतजाम के बारे मे पूछा। होटल वाले ने हमारी वेषभूषा से पहचाना कि हम दक्षिणी हैं और हमारा 'आडनांव' (सरनेम) पूछा। वह बताने पर 'कोकणस्थ ब्राह्मण' कहकर थोड़ा पीछे की ओर। मेरे साथ के मेहमान का भी नाम पूछा और वे भी कोकणस्थ ही हैं यह जानकर वह और भी विचलित हुआ। उसने हमें खाना तो खिलाया पर हमारी पत्तले औरो से ज़रा दूर-दूर ही रखी। मगर हमारे दिये पैसो को उसने अस्वीकार नही किया। किसे मालूम उसने हमसे पैसे भी ज़्यादा ही वसूल किये हों।

उत्तर हिन्दुस्तान मे और विशेषतः चित्तौड-भेलसा के भाग में दक्षिणी लोगो से वहा वाले बहुत चिढते हैं। मराठों ने राजपूतो पर बड़ा अत्याचार किया ऐसा कहते है। 'हिन्दुस्तान मे तीन कसाई, पिस्सु, खटमल और दक्खिनी भाई' वहां की यह प्रचलित कहावत कदाचित इसी बात की साक्षी है। तथापि दक्षिणी मनुष्य दक्षिणी मनुष्य का और वह भी परदेश मे इस प्रकार उपमर्द करे, यह थोडा खेदजनक है। उस उम्र में मैं यह समझ नही पाया कि ऐसा क्यो होता है? आज भी यह क्षुद्र-बुद्धि कम नही हो पायी है। इतनी शिक्षा और इतनी प्रगति के पश्चात् भी यह भाव कम नही हुआ, क्यों नही हुआ यह समझ मे नही आता।

दान के दिन लद गये

ऐसा बताते है कि उज्जयिनी के वास्ते राजपूतो मे तथा बाजीराव

प्रथम में घमासान लड़ाई हुई। क्षिप्रा नदी, जिसके किनारे उज्जैन बसा हुआ है, खून से लाल हो गई। हिन्दू-हिन्दू मे चलने वाली इस लड़ाई के खत्म होने के आसार नज़र नहीं आते थे। राजपूत लोग कहते थे 'हम रणागण में मर मिटेंगे पर पीछे हटेंगे नहीं'। मराठे लोग कहते थे, 'अपना मातृ देश छोडकर हम इतने दूर आये हैं सो अपयश (असफलता) प्राप्त करने के लिए नहीं, प्रत्युत जीतने के लिए आये है।' दोनो दल कहते थे 'या जीतेंगे या रणागण मे ही खत्म हो जायेंगे।' अन्त मे एक चतुर ब्राह्मण ने राजपूत राजा से कहा कि, 'तुम यदि उज्जयिनी दान मे दे दो तो यह दक्षिणी ब्राह्मण उसे लेने के लिए तैयार हो जायगा।' और उस ब्राह्मण ने बाजीराव से भी पूछा कि 'आपको लडकर ही उज्जयिनी को लेना है ऐसी तो कोई बात नहीं है न ! यदि उज्जयिनी आपको दान मे मिल जाय तो !' इस पर बाजीराव ने कहा, "दान लेना तो हमारा प्रथम धर्म है।" इस पर क्षिप्रा मे खड़े होकर पानी की अजलि बाजीराव के हाथ पर डालकर राजपूत राजा ने यह सिद्ध कर दिया कि शौर्य पर औदार्य द्वारा विजय प्राप्त की जा सकती है। और बाजीराव ने यह सिद्ध करके कि 'धर्म वस्तुतः व्यवहार है' अपने को 'साधनानामनेकता' इस तत्व का आद्य प्रतिपादिक सिद्ध किया। यह पुरातन राजकारण (राजनीति) आज के जगत् मे कितना दुर्लभ हो गया है ! आज भूलो-भटकी बकरियों को भी कोई खडोबा (मराठों का देव) पर बलि चढ़ाने के लिए तैयार नहीं, तब हाथ में आई हुई सत्ता किंवा सम्पत्ति को दान मे दे डालने की बात तो दूर रही।

वैद्यराज और भाजी वाली

उज्जयिनी शहर मराठो के हाथ मे किस प्रकार आया इसका उपरि-वर्णित इतिहास मैं अपने सहयात्री विद्यार्थी कार्यकर्त्ताओ को बता रहा था,

इस बीच हमारी रेलगाड़ी क्षिप्रा स्टेशन के समीप आयी। जिस क्षिप्रा नदी का वर्णन कालिदास ने अपने काव्य मे किया है, उस भाग्यशालिनी नदी के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त करके बडी प्रसन्नता हुई। क्षिप्रा की तरगो का सहवास प्राप्त करके आने वाला 'अनिल' सर्दी के दिन होने के कारण आनन्द प्रदान करने के स्थान पर थोड़ा त्रास देने वाला ही सिद्ध हुआ। थोडी ही देर मे हमारी गाड़ी उज्जैन स्टेशन मे प्रविष्ट हुई। काग्रेस तथा महात्मा गा धी के जयकारो से हमारा स्वागत हुआ। न तो किसी ने हमार नाम पूछा न कोई बिदक कर पीछे को ही हटा। सारे स्टेशन पर खादी टोपी वालो का अपार समुदाय एकत्र था। फूलो के एवं सूत के बने हारो की गणना करने की 'सावरकरी' आदत नहीं थी, अतः मैंने उन्हे गिना नहीं। तथापि नेतागिरी का यह बोझ कुछ कम भारी नहीं था। मेरी हिन्दी मे बातचीत को सुनकर अनेक को आनन्द हुआ और कुछ अचरज भी हुआ। कालिदास की इस नगरी मे सस्कृत भले ही चालू न हो, तो भी सस्कृतमय हिन्दी यहा का चालू सिक्का है। निःसशय यह ऊपर के दर्जे के लोगों मे ही है। ऐसी हिन्दी सब्जीमडी की भाजी वाली के साथ बातचीत करनी हो तो किस उपयोग मे आयेगी ?

ऐसा कहते है कि पूना के एक प्रख्यात वैद्यराज कुछ वर्ष पूर्व उज्जयिनी मे आये थे, उन्होंने एक जगह भाजी की ओर अङ्गुली का सकेत करते हुए एक कुजडिन से पूछा, "इस वस्तु जात का क्या मूल्य है ?" पर उस कुजडिन को इस वाक्य का अर्थ ही अवगत नहीं हुआ। यह देखकर वैद्यराज को अत्यधिक आश्चर्य हुआ। 'बाधति बाधते' की बातें सुनने वाले शास्त्री बाबा की कल्पना कदाचित् ऐसी रही हो कि इस अवन्तिकापुरी मे सामान्य ललनाएं भी अत्यधिक सस्कृत-पटु होती है।

क्या यही उज्जैन है ?

दो दिन के मुकाम मे सवत्सरकर्ता विक्रमादित्य की राजधानी मे अनेक दृश्य देखे और अनेक अनुभव प्राप्त किये। भर्तृहरि को 'शतकत्रय' लिखने की प्रेरणा करने वाले इस नगर मे आज ऐसा कुछ भी नहीं रह गया था, जिससे किसी को कोई प्रेरणा मिल सके। कही भी नवरत्न सभा दृष्टिगत नहीं हुई। इसके विपरीत सर्वत्र 'शाभवी' के ही अड्डे दिखाई दिये। कालिदास के नाम से शालागृह तथा विद्यालयो के दीखने के स्थान पर उपाहार-गृह और नापित-गृह ही देखने का प्रसग आया। पूना मे भी शिवाजी, लोकमान्य, गाधी आदि के नाम ऐसी ही दूकानो से सलग्न नजर आते है न ! कदाचित् लोकतत्र और समताभाव का यह प्रमाण होगा। इतिहास मे अमरपद प्राप्त करने वाली इन वस्तुओ को अमरपद क्यो प्राप्त हुआ इसका कारण पार्थिव दृष्टि से दिखाया जा सकने वाला बच नही रह गया है। इस नगर का देव 'श्री महाकाल' कितने ही शतको से भूमिगत (अंडरग्राउन्ड) हो गया है। विक्रम सिर्फ सवत्सर ही में रह गया है, वैभव सिर्फ स्मृति मे। 'आहे साप्रत उज्जनी नगर ते राज्यात शिद्याचिया'। पर वहां भी वैभव अथवा आधुनिकता नही है।

चैतन्य लाभ

दो दिनो के मुकाम मे भिन्न-भिन्न पाच-छः जगहो पर चर्चा और व्याख्यान हुए। कहने की ज़रूरत नही कि यह सब हिन्दी ही में हुआ। कुछ अभिसीमित और कुछ सार्वजनिक भाषण हुए। पर इस सर्व मुकाम मे अवन्तिका के प्राचीन वैभव और अद्यतन दैन्य के मध्य विद्यमान अन्तर के कारण कुछ खिन्नता की छाया ही की पृष्ठभूमिका रही। उस खिन्नता में विभिन्न कार्यकर्तागण अड़ौस-पड़ौस के संस्थानिको (नरेशो) के अत्याचारो की कथाए सुनाकर और वृद्धि ही करते जा रहे थे। बगैर

किसी पूछ-ताछ के लोगो की गिरफ्तारी, स्त्रियो पर अत्याचार, गरीबी, अविद्या, जनता का शोषण, पश्चात्पद भिल्ल लोगो के साथ अमानुष व्यवहार, आदि विषयक वृत्तान्त कथाओ को सुनते सुनते चित्त विषण्ण सा एवं शून्यप्राय सा हो उठता था। उसी प्रकार प्रचलित राजनीति मे भाग लेने वाले कार्यकर्ताओ के बीच विद्यमान विरोध भी चित्त को दुःख देता था। कोई कामरेड आये और आकर शिकायत करने लगे कि ये कांग्रेस वाले पूंजीपतियो की वकालत करते हैं। कांग्रेस वाले इसका उत्तर यो देते कि ये कामरेड जिनकी तरफदारी कर रहे हैं वे सारे खेतिहर उनके पिताओ के देनदार हैं।

इसी चाल पर ये सारे कार्यकर्ता मौजूदा राजनीति को चला रहे थे। इस मौजूदा हालत से ऊपर उठकर यह देश फिर कब ैभव को प्राप्त करेगा और जगत् के लिए ललामभूत विद्वान कब पैदा होगे ! फिर कब संवत्सरकर्ता विक्रम का निर्माण होगा ! पराक्रम को महाकाव्य द्वारा चिर-स्थायी करने वाला महाकवि कब आयगा ? शौर्य्य एवं शृंगार इन दोनो रसो का सुन्दर सामजस्य समाज मे एव काव्य मे कब देखने को मिलेगा ! इसी प्रकार के अनेक विचार देर तक मन मे आते रहे। विदा लेने से पहले 'पुरुषस्य भाग्यम्' नामक लोक-कथा में न्याय देने वाले महाकाल के दर्शनो के लिए गया एवं श्रद्धायुक्त अन्तःकरण से प्रार्थना की, "भूमि पर का अन्याय असह्य हो गया है। प्रकट हो और जो हमारा है वह हमे मिलने दे।" अन्तःकरण मे मिलने की आशा अनुभव होने लगी। और इस प्रकार अवन्तिका का आना सार्थक होगया। सच्चा चैतन्य पाकर मैंने अवन्तिका से विदा ली।

कांग्रेस का राज्य आया तो—

उस दिन कोई कार्यक्रम नही था। न कही व्याख्यान, न कोई अनौपचारिक चर्चा—कोई भी तो बात ऐसी नहीं थी, जहां मेरे उपस्थित रहने से किसी की शोभा मे कुछ वृद्धि हो। कही कोई उद्घाटन का कार्यक्रम नहीं था, या ऐसी भी बात नही थी कि किसी पत्र-प्रतिनिधि को ज़बर्दस्ती बुलाकर और चाय पिलाकर उसे मुलाकात दी जाय या किसी महत्वशाली व्यक्ति से मिला जाय।

उस दिन मेरे लिए कोई 'कार्य' नही था। इतना ही क्यो, किसी को साथ लेकर बोलपट (सिनेमा) देखने भी नहीं जाना था। छठे छमाहे कभी एकाध दफा बोलपट देखने का मौका मिलता था और जोडी से सिनेमा देखने का मोका तो समझिये कपिलापष्ठी का योग ही था। तात्पर्य उस दिन की सांझ किस प्रकार गुजारी जाय इस बात पर मैं विचार कर रहा था। हर रोज के मेरे जोड़ीदार भी आज मेरा साथ देने वाले नहीं थे, एतावता, आज मैने नये पुल पर जाने का निश्चय किया।

हमारा मारुति वीरों का है

घूमने के लिए हाथ मे लाठी लेकर बाहर निकला। मस्तिष्क मे अन्य कोई विचार नही था; अतः स्वभावतः मेरा ध्यान पैरो के नीचे के रास्ते की ओर गया। रास्ते मे ब्रिटिश-नीति-विचक्षणो के निवेदन की अपेक्षा भी अधिक गड्ढे दिखाई दिये। दोनो किनारो पर घर थे। इसी आधार पर इस बीच के भाग को रास्ता कहने के लिए विवश होना पडता था। कालांतर से मनुष्य की कीर्ति पर आने वाले धब्बे जिस प्रकार धुलकर साफ हो जाते हैं, उसी प्रकार उस रास्ते का तारकोल भी नास्तिप्राय हो गया था। हमारे उस रास्ते पर चूकि कोई 'माननीय' (आनरेबुल) नही रहता था, अतः रास्ते की मरम्मत का शुभ मुहूर्त हमारे लिए उदित नही हो पाया था। यह भी सुनने मे आता था कि मिलने वाला तारकोल सभासदों के कारखानो ही में खत्म हो जाता था। संसार का यात्रापथ विकट है। इसका यदि प्रत्यक्ष दर्शन करना हो तो हमारी गलियो के रास्ते देख लीजिए। रास्ते की अवस्था के कारण सरल चलने वाली स्त्रियो के पैर भी कालिदास के शब्दो में 'विषमी भवन्ति' की अवस्था में आ जाते थे। और जब मै गुजर रहा था उस समय 'कांग्रेस का मंत्रि-मंडल बन जाने पर भी तेरे हाथ का उस्तरा थोड़े ही छूट जायगा' ऐसी आवाज नामू की दूकान से आई। संभवतः किसी महानुभाव ने मुझे देखकर ही ऊची आवाज मे ये उद्गार व्यक्त किये थे। नामदेव का सैलून वास्तव मे एक वाचनालय ही था। उसके धधे के ग्राहको की अपेक्षा इसमें मुफ्त के पाठको की ही संख्या बढ़ी-चढी रहती है। (धीमे से कहता हूँ, कभी-कभी मै भी ऐसो मे शरीक हो जाता हूँ।) उपर्युक्त वाक्य मैंने सुना, पर वहां न ठहरते हुए मै चुपचाप यहाँ से आगे हो लिया और अपने 'वीरो के मारुति' के पास आया। पाठको को मै रहस्य की बात

बताऊं ! हमारा यह मारुति वीरो का है और गत ५० वर्षों में उसने अपनी यथार्थता साबित की है।

भैंसे और मोटरें

कुछ क्षण मन मे विचार आया कि पहले के निश्चय को बदलकर श्मशान मे से होते हुए नदी के परले पार निकल जाऊ। पर फिर विचार किया कि नये पुल पर जाकर टहल आने के विचार को तिलाजलि देना ठीक न होगा। सामने की ओर चलने लगा। टूटे बुर्ज की ओर देखकर किनारे-किनारे से मै चल रहा था, क्योकि बीच मे से होकर निकलने की सुविधा ही नही है इस रास्ते पर। सवेरे भैंसो का, दोपहर को मास्टरनियो का और साझ को मोटरो का तांता ही इस रास्ते पर बंधा रहता है ! इस अग्निपरीक्षा मे से निष्कलंक उत्तीर्ण हो जाना एक बड़े भाग्य की बात है। मैं रास्ते के किनारे पर चल रहा था। मेरा ध्यान किसी दूसरे की ओर भले ही न रहा हो पर दूसरो का ध्यान मेरी ओर नही था, यह नही कहा जा सकता था। कारण, तत्काल दाईं ओर के एक मकान से 'अहो काका साहब !' ऐसी आवाज आई। भ्रमण मे विघ्न उपस्थित हो गया ! मुझे उन सज्जन के घर जाना पड़ा।

हमारे नाना

दरवाजे मे से अन्दर घुसते ही उन सज्जन ने कहा, "परमेश्वर ने आज हमारी शिकायत सुन ली; मुझे कितनी खुशी हो रही है !" मैं अलबत्ता मन मे अप्रसन्न था। उस अप्रसन्नता से ही मैं अन्दर गया। गर्मी के मौसम में भी ज़मीन गीली ही थी। हो सकता है, गर्मी से बचने के खयाल से मकान मालिक ने ही ऐसा इन्तजाम कर रखा हो। कमरे में एक मैली सी दरी पड़ी थी। उसपर एक तकिया था, पर वह ब्रह्म की भांति माया विरहित था अर्थात् उस पर गिलाफ नही था। दरी पर रंगीन

दाग़ नज़र आ रहे थे। वह कितनी पुरानी थी यह बतलाना आसान नहीं था। तथापि आदरातिथ्य मे नाना कुछ कम नही थे। उन्होंने मुझे ढासने के लिए उस तकिये के पास बैठाया। आँख मे आँसू भर कर बड़े करुणाकुल स्वर में नाना कहने लगे, 'अजी, अब हमारी ओर देखिए न, अब हम लोगो के मरने की बारी है !" नाना हमारी पैंठ में एक होनहार व्यक्ति हैं। कोई भी व्यक्ति उन्हे काम के लिए बुलाये वह झटपट हाजिर हो जायेगे। गणपति उत्सव हो, मारुति उत्सव हो, नाना काम करने के लिए सदा तत्पर रहेगे।

नाना निम्न-मध्यवित्त गृहस्थ हैं। एक-दो दूकानो पर लिखापढ़ी का काम करते है तथा बाकी का चरितार्थ (उदर-निर्वाह) भिक्षुकी के द्वारा पूर्ण करते हैं। १९४२ से पहले तक उनकी हालत अच्छी थी, यह मुझे मालूम था; अतः उनकी इस करुणाकुलता का अर्थ मेरी समझ में नहीं आया।

राशनिंग के कारण धर्म डूब गया

"अजी, आपके इस राशनिंग के कारण हमारा धर्म तो डूब ही गया; अब हमारे प्राणो के भी निकलने का वक्त आ रहा है!" नाना के इन शब्दो को सुनकर मैने उनसे पूछा—"आप क्या कहना चाहते हैं?" नाना व्याकुल हो कहने लगे, "छठे-छमाहे एकाध दफा गेहूँ खाने वाले हम लोगो को अब हर रोज गेहूँ-ही-गेहूँ खाना पड रहा है ! हर रोज कैसे खायं ! उसके लिए आवश्यक घी कहा से लाये ? अजी, बाजरे की तो अब याद ही रह गई है ! अहा ! रात के वक्त का थालीपीठ (एक खास महाराष्ट्रीय चीज) खत्म हो गया, मक्खन अदृश्य हो गया और जवारी का तो क्या कहना, उसकी तो सुगन्धि तक नही आती ! और चावल हफ्ते मे आध सेर भी मिल जायं तो समझिए ढेर-के-ढेर मिल गये।

चित्राहुति (भोजन समय का सस्कार) तक नही डाल सकते । "आत्मानं सतत रक्षेत्" के न्याय से भात की चित्राहुतियां हमने बन्द करदी । अजी, धर्म डूब गया ! श्राद्धपक्ष मे से पिंडदान उठ गया ! पितर कैसे संतुष्ट होंगे ? कही, युद्ध और देर तक चला तो क्या होगा ? अजी, यह पाप अब देखा नही जाता ! ये देखिए हमारे बच्चे ! ज्योंही उन्होंने यह कहा त्योंही लडके-लडकियो का एक मजमा कमरे मे चला आया । छटाक से लेकर पसेरी तक के जैसे क्रमवार बाट रहते हैं वैसी ही यह बालसेना दिखाई देती थी । सध्या के चौबीस नाम लगभग खत्म ही हो गये होंगे, और बंगाली नामो पर भी आक्रमण हुआ होगा, ऐसा प्रतीत होता था ।

चावलो के अभाव में

नाना की पत्नी को विवाह के समय दिया गया आशीर्वाद अक्षरशः सत्य हुआ नजर आता था । (महाराष्ट्र मे वधू को 'अष्टपुत्रा सौभाग्यवती भव' यह आशीर्वाद देने की प्रथा है) 'अजी काका, यह देखिए हम ब्राह्मणो के बच्चो की चावलो के अभाव मे हुई दयनीयावस्था ! सम्प्रति कहीं भी श्राद्धपक्ष-कालिक भोजन नहीं । लग्नकार्य (विवाह) मे हाथ भीगता नही । "षरामासे षरामासे भवन्तो ब्रुवन्तो" की निष्फल बकवास करनी पडती है । देखिए, आपही देखिए, इन बच्चो की निकली हुई हड्डियाँ देखिए ।"

मैंने बच्चो की ओर देखा । साधारणतया नाना का कहना सही था । एक बार मन मे आया भी कि कहूँ ढेर सारे बच्चो को पैदा ही क्यों किया ? पर यह सवाल मुझी पर उलट सकता था, अतः मैंने पूछा नही ।

मैंने उनसे कहा, ' अजी, सरकार ने तो ऐसा छापा है कि मुख्यतया भात पर ही गुजारा करने वाले मनुष्य को हर रोज १० औंस चावल, ५ औंस धान, ३ औंस दाल, ८ औंस दूध, २ औंस फल और १० औंस

भाजी-तरकारी आवश्यक है।"

उन्होने मुझसे पूछा, "औस किसे कहते हैं, यह तो बताइए?"

मैंने कहा, "क्षण-भर को मान लीजिए आधा छटाक!"

इस पर वह बोले, "इसका एक चौथाई हिस्सा भी अपने को नही मिलता! भाजी तो नजर मे ही नही आती। और एक रुपए का सेर दूध मैं कैसे लूं? काले बाज़ार मे चावल मिलते है, पर पैसे कहां है? पुनश्च, इस प्रकार के मुकदमे भी गरीबो पर ही होते है। आज यदि किसी को आराम है तो वह पैसे वालो को और पुलिस वालो को। उन्हें किसी भी बात की कमी नही है।"

मैंने कहा, 'नाना, आपका कथन सर्वांशतः सत्य नहीं है। यदि पूना के लोगो को यह असत्य प्रतीत हुआ होता तो उन्होने सगठित होकर प्रतिकार किया होता। बम्बई मे अधिक 'सीधा' (राशन) मिलता है। अधिक चावल मिलते हैं। पूना जिले मे आबे मोर (उम्दा चावल) पैदा होता है और पूना के हिस्से मे घटिया चावल आता है। यह सब इसलिए चल रहा है, क्योंकि आप लोग इसे बर्दाश्त कर लेते है!"

"गलती है आपकी, आप कांग्रेसवालो ने सत्ता त्याग दी, उसके कारण हम लोगो की यह दुर्दशा हो रही है!" नाना बोले।

'अजी, जब हम अधिकारारूढ थे तब हम धर्मध्वसी है, मुसलमानो को सिर पर बैठा लेने वाले है, अधिकार से चिपके रहने वाले है, ऐसा आप लोगो के नेता और समाचार-पत्र ही कहा करते थे न? और जिस दिन हमने अधिकार त्याग दिया उस दिन 'मुक्ति-दिवस' मनाने वालों में आप ही लोग तो थे! और आज भी आप लोगो के 'स्वातन्त्र्यवीर' अंग्रेज़ो का ही कारोबार अच्छा था, ऐसा कहते है न?"

"अजी काका, अब उन पुरानी बातो को जाने दीजिए। पेट-भर

अन्न नही मिलता, ठीक से कपड़े नही मिलते। हम जनता हैं न ! आपको स्वराज्य पाना है, उसके लिए जनता की [illegible] है या नही ! या कब्रिस्तान का स्वातंत्र्य आप चाहते हैं ? कुछ भी कीजिए, पर हमें जिंदा रखिए !"

बिलकुल ऐसे ही शब्द सन् ४३ के आखिर मे नासिक जेल के अदर वहां के एक सिपाही के मुंह से भी सुने थे। वहा राशनिंग अभी शुरू नहीं हुआ था। बाजार मे गरीबो को अनाज नही मिलता था। रात को पहरे के वक्त हमारे कमरे के पास आकर वहा के पहरेदार हवालदार ने भी यही विचार प्रकट किये थे—'आप सब हम लोगो के लिए कष्ट-सहन करते हैं, यह सच है। आप राज्य हासिल कर लेंगे, यह भी सच है। पर उस राज्य मे सजीव प्रजा तो होनी चाहिए न ! कुछ भी कीजिए हमें जीवित रखिए !'

उसके ये शब्द मनश्चक्षुओ के सामने आये। मैंने नाना से कहा, "आप जो कुछ कहते है वह सब सच है। पर यह सग्राम किस लिए आरम्भ हुआ है, यह आपको याद है न ? पैठनी (एक कीमती वस्त्र) की मांग करके अन्त मे एक थिगरा लेकर संधि करलें क्या ? आप लोगो को धीरज रखना चाहिए। दुर्गतियो का हलाहल पीकर ही जनता स्वतंत्रता प्राप्त करेगी। यह सब अपने को भोगना ही चाहिए। अन्य देशो में स्वातत्र्य के लिए बडे पैमाने पर प्राणार्पण करना पड रहा है, उसके मुकाबले मे हम इतनी प्रचंड वस्तु के लिए क्या कीमत दे रहे हैं ! यदि आप जैसे शिक्षित व्यक्ति ही प्रतिगामी विचार रखने लग जायेंगे तो काम कैसे चलेगा ? अधपेट खाकर कैसे रहना चाहिए यह तो मालूम है न !"

"अजी, सबके लिए अधिकार लीजिए। हमे भी अधपेट मत रखिए, औरों को भी मत रखिए !" नाना ने कहा।

चावल तो मिलेंगे ?

नाना का विचार तक शुद्ध था। पर तर्क से आज तक किन प्रश्नो का समाधान हुआ है ? मैंने उनसे कहा, "मान लीजिए, कांग्रेस ने अधिकार ग्रहण कर लिया, तो उससे आपके विचार मे ऐसी कौन सी क्रान्ति आपके 'सीधे' मे उत्पन्न हो जायगी ?"

"निदान (कम-से-कम) एक पउआ-भर चावल तो ज्यादा मिलेंगे, इतना तो होगा न ?" नाना ने कहा।

मैं उनके इस वाक्य को सुनते समय उनके नेत्रो की ओर देख रहा था। उनमे मूर्त्तिमान कारुण्य निवास कर रहा था। उनमे आशा भी प्रतिफलित हो रही थी। मैने कुछ भी उत्तर नही दिया और चाय के आग्रह को भी अस्वीकार कर दिया।

उस समय मेरे मस्तिष्क मे दूसरे ही खयाल आ रहे थे। स्वातंत्र्य के लिए प्राणार्पण करने का उपदेश करने वाले, परकीय सत्ता की नौकरियो के पीछे पड़े हुए नवयुवक मेरी आखो के सामने आ रहे थे। स्वातंत्र्य के लिए घर-द्वार पर अग्नि रखने के लिए कहने वाले, किरायेदारो का किराया अनेक गुना बढ़ाकर उनका शोषण करने वाले मुझे दीख रहे थे। 'स्वदेशी वस्तुएं स्वराज्य का मूलमंत्र हैं' कहकर हमारी भावनाओं का अवैध फायदा उठाकर नफेबाजी मे करोड़ो रुपये पैदा करने वाले 'त्यागी' गाधी-भक्त मेरी आखो से ओझल नही थे। सूर्य के अस्त हो जाने पर, चन्द्र के अप्रकाशित रहते समय, तारो के भी टिमटिमाने से पूर्व यदि जुगनू न चमके तो और कौन चमकेगा ? देश की स्वतन्त्रता के लिए छाती पर गोलिया झेलने वाले, सिर पर लाठी पड़ने के कारण लोहूलुहान हुए देशभक्त भी मेरी आखो के सामने आते थे। उसी समय बहती गंगा में हाथ पखारने वाले देशभक्ति का ज्योतिरिंगन की भाति प्रकाश फैलाकर

अपने आदर्श का व्यापार करने वाले लक्ष्मीपुत्र भी आंखो के सामने खड़े थे। इन सबसे मैं कुछ भी नही कह सकता था। अन्याय, घूंसखोरी और पाप का साम्राज्य सर्वत्र फैला हुआ देखकर महात्माजी उपवास करने की सोच रहे थे। समाजांतर्गत यच्चयावत् वर्णों मे नैतिक अधःपतन हुआ दृष्टिगत हो ा था। ऐसी स्थिति मे एक गरीब ब्राह्मण द्वारा अधिक चावलो के लिए अधिकार स्वीकार करने का आग्रह किये जाने मे जो एक विडंबना छिपी हुई थी वह 'क्षमस्व' कहने योग्य ही थी। उत्कट से लेकर उच्छिष्ट पर्यन्त सब की यही गति थी। वह आदर्श के अनुरूप नही थी यह भी सत्य है। पर उसमे कुछ ऐसी सचाई अवश्य थी जिसे मजूर किये बगैर नही रहा जा सकता था। 'जीना है या मरना है?' इस सवाल का उसमे उत्तर छिपा हुआ था। कुछ लोग कहेगे कि ऐसे आदश-शून्य जीवन की अपेक्षा मर जाना अच्छा और कुछ लोग कहेगे कि आदर्शों का अस्तित्व जीवित मनुष्यो के ही लिए है; अतः वे जीवित रहने को अपना आद्य कर्त्तव्य समझेगे। और मै ऐसा कौन हूं जो दूसरे प्रकार के लोगो को बुरा-भला कहूं? वापस जाते समय रास्ते की भीड के कारण मेरी विचारो की लडी टूट गई, तथापि सारी रात-भर उस ब्राह्मण की दीन मुखमुद्रा और 'पउआ-भर चावल तो अधिक मिलेंगे' यह वाक्य मेरे अन्तःकरण के सामने बना ही रहा।

(यह लेख १९४५ मे मराठी मे लिखा गया था। उस समय किसी भी प्रांत में काग्रेसी-मंत्रिमडल न था।)

तब तो सभी मुनीर !

अरुणा मेरा स्कूल के दिनो का मित्र है। किन्ही कारणो से कालेज की पढाई अधूरी छोडकर उसे नौकरी के लिए विवश होना पड़ा। आज उसकी हालत सतोषजनक है तथा दुनिया की निगाह में वह पूर्ण सुखी है। पढ़ाई-लिखाई उसकी भले ही छूट गई हो पर ज्ञानप्राप्ति की उसकी आकांक्षा कभी नहीं छूटी। उसका अध्ययन विस्तृत, विचार व्यापक, एव दृष्टि श्रेष्ठ-वस्तु ग्रहणशील है। प्रचलित राजनीति को वह अच्छी तरह जानता है और इसी कारण अनेक बार उसके साथ विचार-विनिमय करने मे तथा वादविवाद करने में मुझे आनन्द अनुभव होता है। इतना ही नहीं, कई बार तो उसकी जानकारी का मुझे फायदा भी खूब होता है।

जेल से छूटकर आने के बाद हमेशा की भाति उसने मुझे चायपान के लिए घर बुलाया तथा इस बार की जेलयात्रा के अनुभव पूछे।

मैंने उसे सुनाना शुरू किया—"सरदार गृह मे ९ अगस्त को तड़के ही पकड़-धकड़ की खबर हमें मिल गई थी। बम्बई जाने से पहले ही हम

समझ गए थे कि फिर पूना हम नही लौट सकेगे। सीधा यरवदा की ओर रवाना होना पडेगा। अपने घरवालो को भी हमने यह समझा दिया था। तथापि गांधीजी के भाषण से एक महीने तक तो कुछ नही होगा, ऐसा हमें प्रतीत होता था और इसके कारण हम लोगो मे से बहुत से लोग सरदार-गृह मे निःशक थे।

६ अगस्त को प्रातःकाल के समय पुलिस वालो ने सरदार-गृह को घेर लिया वहा मै पकड मे नही आया, यह सही है, तो भी शिवाजी नगर पर रेल से उतरते ही अन्य अनेक कार्यकर्ताओ के साथ उसी दिन दोपहर के वक्त पकड लिया गया। ६ अगस्त की रात हमने यरवदा ही मे व्यतीत की।

१० अगस्त को सवेरा होने से पहले से यरवदा की सारी बैरके भर गईं। कुल जमा आठ-दिन ही मे कैदियो की सख्या हजारो मे हो गई। नियमानुसार ओढ़ना-बिछाना, कपड़े, भाडे-बर्तन कुछ भी मिलना मुश्किल हो गया। जेल के अधिकारी घबराये हुए नजर आते थे। घटे-घटे बाद दिन को भी और रात को भी राजकीय कैदी नारो के साथ यरवदा-मदिर मे प्रवेश करते थे। बैरको मे नियम का भंग करके आदमियो को ठूसा जा रहा है। जेल के अधिकारियो के लिए अनेक प्रयत्न करने पर भी इन्तजाम करना कठिन हो गया था। सब राजबदियो की तरफ से जेल के अधिकारी मेरे साथ बहुत बाते ठहराते थे। उनकी लाचारी मुझे स्पष्ट नजर आती थी। राजबंदियो की असुविधा, कष्ट और उनका गुस्सा प्रतिक्षण मुझे अनुभूत होता था। आखिर मे मेरे कहने पर हमारे साथियो ने बैरको मे जाने से इन्कार कर दिया। नियमानुसार प्रत्येक को जगह देने के लिए आग्रह किया। यरवदा के आसपास मिलिटरी सर्वत्र फैली पड़ी थी। मैंने अधि-कारियो को सुझाया कि उन सैनिको के पास से तम्बू लाकर इन्तजाम किया जाय। उसे उन्होने मंजूर कर लिया। दो-चार दिन मे सर्वत्र तम्बू गाड़

दिए गये और जेल को फौजी छावनी का स्वरूप प्राप्त हुआ। हमने निश्चय किया कि अपना सारा इन्तजाम हम खुद देखेंगे, फलतः हमारी इस बस्ती को कुछ काल के लिए स्वय-शासित उपनिवेष का स्वरूप मिल गया। रसोई का काम करने वाले, परोसने का काम करने वाले, चिट्ठीरसाँ का काम करने वाले, व्यायाम का इन्तजाम करने वाले सब हमी लोगो में से थे; सारा काम अनुशासनपूर्वक चलता था। राजकीय कैदियो से भिन्न जो कैदी वहा काम करने आते थे वे भी सब प्रसन्न थे।

इस जानकारी को सुनकर अरुणा ने कहा—"तब तुम नेताओं का तो और भी ज्यादा इन्तजाम रहता होगा।"

"वैसी कोई बात नही थी। यह ठीक है कि जेल में सबसे मुझे आगे कर रखा था; परन्तु उसकी वजह से हमारे लिए कोई खास इन्तजाम किया गया हो, सो कुछ नही था। इसके विपरीत अधिकारियो और कैदियो में जो झगडे पैदा हो जाते थे उन्हे मिटाते-मिटाते हमारी नाक मे दम आ जाता था। तो भी एक बात ध्यान मे रखने योग्य है। वह है, मुनीर नाम का कैदी।"

"यह और कौन कैदी है?"

"यह काली टोपीवाला कैदी।"

"काली टोपीवाला?" अरुणा ने पूछा।

"हा, जिस कैदी ने एकाधिक बार सजा हासिल करने का पराक्रम किया हो, वहां उसे काले रंग की टोपी पहनाई जाती है। इतनी बात जरूर है कि सजाएं सपत्ति विषयक अपराधो की होनी चाहिए। उनको ही अधिक मान दिया जाता है। पूंजीवादी समाजरचना मे जीवित की अपेक्षा वित्त को श्रेष्ठ समझा जाता है और उसका ही संरक्षण अधिक किया जाता है। काली-टोपी की तरह जेल मे लाल और पीली टोपिया भी होती

हैं। पाच से अधिक वर्ष की सजा वाले कैदी को पीली टोपी पहननी पड़ती है। धोखेबाज और भागने की कोशिश करनेवाले कैदी को लाल टोपी दी जाती है। अनेक कैदियों की टोपिया दुरगी रहती है। सन् ३१ मे हमारे वार्ड मे एक तिरंगी टोपीवाला भी कैदी रहता था। उसे बाबू चश्मेवाला कहते थे। मुनीर था तो काली टोपी वाला पर वह उतना ही ईमानदार और खुले अन्तःकरण का तथा सच बोलने वाला था।

"तो फिर मतलब यह हुआ कि चोर भी ईमानदार होते हैं?" अण्णा ने कहा।

"जितनी मात्रा मे चोर ईमानदार हो सकते है उतनी मात्रा मे!"

"इस मुनीर की बात तो सुनाइए!"

"यह मुनीर जब तक हमारे तम्बू मे रहा बिलकुल नियम से मेरा सारा काम करता रहा। जो भी बात उससे कहते वह बिलकुल ठीक से कर दिया करता। इतना ही क्यो, हमारे तम्बू मे रहने वाले अन्य दो राजबन्दियों के बारे मे वह अधिक आदर नही दिखाता था और अन्य राजबन्दी उसके बारे मे हररोज़ शिकायत भी किया करते थे। मैं समझा करता था कि अपने लोगो मे मै प्रमुख हूँ इसीलिए शायद वह मेरे प्रति इतना आदर प्रदर्शित करता है और मेरे लिए इतनी महनत करता है। यही समझकर मैं उसके साथ व्यवहार किया करता था। पर एक दिन हमारे मे से एक बन्दी ने उसके इस व्यवहार का भेद मालूम कर लिया। जब मैंने उसे सुना तो मै चकित रह गया। मैंने उसे बुलाया। उसने मुझसेकहा:—

'आपके प्रति मेरे हृदय मे विद्यमान आदर-बुद्धि का जो कारण आपको विदित हुआ है वह सत्य है। गत बीस बरसो मे मैंने अनेक चोरिया की हैं, पर मुझे कुछ बहुत ज्यादा प्राप्ति उससे नही हुई। मैने कभी किसी

की हत्या वगैरह नहीं की। मेरे किसी भी अपराध मे आपको हिसा दृष्टिगत नहीं होगी। मैने किसी के घर मे सेध नही मारी, कही बटमारी नही की। जेब काटने के चाकू को छोड अन्य कोई शस्त्र मैने हाथ मे नही लिया।"

"यह धधा तू कब से करता आ रहा है?"

"गत बीस बरसो से! पहले बाल-अपराधी समझकर मुझे अपराधी लडको के कैदखाने मे डाला गया था। वही मैने यह कला अधिक हस्तगत की। कही सभा हुई, या भीड़भाड़ हुई तो वहा मै जाता और शात रीति से एक-दो सेकड मे जेब काटने से जो प्राप्ति होती उतने पर सतोष कर लेता। कभी प्रयत्न असफल हो जाता है, कभी बहुत मामूली चीजे हाथ लगती है। पर आपकी सभा के दिन मुझे जितनी प्राप्ति हुई उतनी कभी नही हुई है; अतः मुझे आपके बारे मे विशेष प्रेम अनुभव होता है! आपके कांग्रेस भवन की प्रायः सभी सभाओ मे मैं उपस्थित रहता था। आखिर भारतीय काग्रेस के अधिवेशन मे भी मैने प्रवेश प्राप्त कर लिया था।"

"यह सब तू करता कैसे है!"

"नियमपूर्वक खादी के कपड़े पहन कर भीड मे जोर-जोर से 'इन्क़लाब जिन्दाबाद' और 'गाधीजी की जय' के नारे लगाते हुए, हाथ मे दो-चार अखबार और दो-चार पुस्तकें लेकर घुस जाने का हमारा तरीका है। सफ़ाईदार उर्दू बोलकर मैंने काग्रेस की सभा मे भी प्रवेश प्राप्त किया। आपके स्वयसेवको से ऐसा प्रतीत हुआ कि यह कोई उत्तर हिन्दुस्तानी कार्यकर्ता है। आपके वैयक्तिक सत्याग्रह के आदोलन के वक्त की सभाओ मे उपस्थित रहकर थोडा-बहुत मैंने हासिल किया। आपके उस समय के सत्याग्रह की सभा मे अट्ठाईस सौ रुपयो के नोट मेरे हाथ लगे और यह सब आपके व्याख्यान के ही बदौलत हुआ, इसीलिए मुझे आपके प्रति

विशेष प्रेम अनुभव होता है।"

मुनीर के इस कथन को सुनकर मै किस तरह चारो शाने चित हो गया यह जब मैंने अरणा को बताया, तब अरणा ने कहा, "इसमे आपको उस अकेले मुनीर के बारे मे क्यो खास बात मालूम पडती है? मुनीर ने इतना तो ईमानदारी से बतला दिया कि उसने काग्रेस की सभाओ से फायदा उठाया है। पर यदि आप अपनी काग्रेस मे जरा अधिक पता चलाने की कोशिश करे तो सैकडो की तादाद मे 'मुनीर' भरे पड़े मिलेगे। खादी टोपी पहनने वाले जुएबाजो को काग्रेस ने निर्वाचन जीतने के लिए अपने नजदीक नही किया! राजनीति मे जैसा समय आये वैसे मतो की लीला करने वाले कृष्ण कन्हैया तुम लोगो मे नहीं है क्या? दुर्भिक्ष का फायदा उठा कर जनता को चूसने के लिए काला बाजार करके सम्पत्ति उपस्थित करने वाले खादी टोपी वाले आज काग्रेस के भीतर है या नहीं?"

"पर अरणा, तेरे कहने का क्या यह अर्थ है कि इस प्रकार की वृत्ति जैसी काग्रेसजनो मे है वैसी अन्य पार्टी वालो मे नही है?'

"सर्वत्र है। हिन्दुत्व के प्रति आस्था प्रदर्शित करने वाले सस्थानिक (देशी नरेश) है ही न? गरीबो की गर्दन मरोडने वाले, बडे-बडे देवालय बाधकर धर्म-मार्तंड नाम से अपनी ख्याति करवाते ही है न? और साहित्य के क्षेत्र मे ही क्या है? श्रीमान् लोगो की स्तुति करके अपनी प्रतिभा को बेचने वाले कितने ही साहित्यिक मौजूद है। स्वार्थ के लिए कला (सगीत) का विक्रय करने वाले कितने ही कलावन्त (संगीतज्ञ) है। कहने का तात्पर्य यह है कि, अपने भीतरी गुणो के बल पर सत्कार प्राप्त करने वालो की संख्या बहुत थोडी है और परिस्थिति का फायदा उठाकर श्रेष्ठत्व हासिल करने वालो की संख्या अधिक है। चोरी करके प्राप्त किये गये धन मे और गुण न रहते हुए प्राप्त किये गये सम्मान मे अन्तर ही

क्या है ? दोनो ओर अहिंसा हो से काम होता है। ऐसी हालत मे बेचारे अकेले मुनीर का नाम बदनाम करना ठीक नही। उसने ईमानदारी से सत्य सत्य कह कर थोडी कृतज्ञता तो व्यक्त की, अन्यत्र तो उतना भी नही नजर आता। सम्मान किंवा प्रतिष्ठा हमे योग्य रीति से मिली है, किंवा हम उसके लिए पात्र हैं, ऐसा विचार कितने ही लोग करते है ? नेहरू जाकेट पहनते ही हरेक अपने को नेहरू ही समझने लग जाता है; भगवी टोपी पहनते ही सावरकरी गाली-गलोच मुँह पर चढ़ जाती है, हाथ मे 'लोक युद्ध' पकड कर हर कोई अपने को स्टालिन समझने लग जाता है, और गाधी का अनुकरण करके कितने ही गाधी भक्तो के दिमाग आसमान पर चढ़ने लग जाते है। आज के समाज मे गुणो के मूल्य-मापन के लिए कोई उपयुक्त साधन नही है। सम्पत्ति को गुणो का नपैना बनाया ही नही जा सकता। लोकप्रियता भी कोई अच्छा नपैना नही है। यही कारण है कि आज की परिस्थिति मे कोई गदहा गोपाल बन जाय तो उसको खोज निकालना बडा कठिन हो जाता है।"

अण्णा के इस वक्तृत्व को सुन कर मै एकदम चित्त होगया ! योग्यता के अनुसार सम्मान का सिद्धान्त बड़ा अच्छा है; पर समाज मे उसे प्रस्थापित करना कितना मुश्किल है। अपनी योग्यता की तुलना मे कोई चीज ज्यादा मिल जाय तो क्या उसे चोरी कहा जाय ! तब तो बडी मुसीबत उठ खडी हो जायगी ! सभी 'मुनीर' हो जायेंगे। प्रयत्न और फल के बीच सदैव समानुपात रहता हो ऐसा थोडे ही है ! पुनश्च, सभी प्रयत्नो का सामाजिक मूल्य एक ही दृष्टि से आका जाय यह भी उचित नही, और यह समझते हुए ही मैने अण्णा से कहा—

"सिकन्दर के सामने एक डकैत ने जो दावा किया वही तू भी कह रहा है। डकैत किन्ही एक-दो के घर चोरी करता है, एक-दो घर मे सेध

लगाता है, एक-दो का खून करता है, पर सिकन्दर प्रदेश के प्रदेश लूटता था, युद्ध मे लाखो लोगो को यमलोक पहुचा देता था, इसी तुलना मे डकैत ने कहा था कि मुझ मे और सिकन्दर मे कोई अन्तर नही है एक का व्यापार फुटकर तो दूसरे का थोक, इतना ही अन्तर है। यदि इसी दृष्टिकोण से विचार किया जाय तो कांग्रेस की सभा मे जेबें कतरने वाले मुनीर में और (उसी सभा मे) बडे-बडे कार्यक्रमो की गप्पें हांकने वाले मुझमे तथा (मेरे जैसे) औरो मे क्या अन्तर रह जायगा ?"

"कुछ भी नही।"

"तब तो सिकन्दर बादशाह की ही नौबत आ गई, ऐसा समझना होगा। सिकन्दर और डकैत ! देश के लिए प्रतिज्ञा करके लडने वाले वीर और जेब कतरा मुनीर ! सचमुच विचार करने योग्य वस्तु है।

चलो यार लन्दन चलें

एक कवि ने कहा है कि काल कभी अत्यन्त वेग से चलता है तो कभी ऐसा प्रतीत होता है कि वह सर्वथा निःस्पंद अवस्था मे है। कभी वह अटकता खटकता चलता है तो कभी वह मार्ग मे आने वाली बाधाओं को इस तीव्र गति से पार करता हुआ चलता है कि देखने वाला दंग रह जाता है। वाग्दत्त वधूवर को विवाह तिथि तक का काल राह मे रुक जाने वाला रुकावटे पैदा करने वाला, अडियल, परिस्थिति को न पहचानने वाला प्रतीत होता है। मृत्यु दड की सजा वाले कैदी को अन्तिम क्षण तक का काल तीव्र गति वाला प्रतीत होता है। राजनीतिक लोग अपनी सुविधा के अनुसार काल के वेग को निर्धारित करने का प्रयत्न करते है। उन को ऐसा प्रतीत होता है कि अखिल जगच्चक्र उनकी आयोजनाओं के अनुसार ही चला करता है। मनुष्य अनेक प्रकार के सकल्प किया करता है, पर काल सदा यही सिद्ध करके दिखाया करता है कि मनुष्यो के सारे प्रयत्न निर्मूल एवं क्षुद्र हैं। मानवीय कर्तृत्व को महत्व प्रदान करके भी किन्हीं दुर्बोध घटनाओं का अर्थ लगाने के लिए

दैव नामक वस्तु को मानना पडता है। कम-से-कम आर्य-संस्कृति मे दैव को काय का पांचवां कारण माना गया है। हम अपने भाग्य का स्वरूप कैसा भी क्यो न निर्माण कर रहे हो, उसका अन्तिम स्वरूप तो कोई अपौरुप शक्ति ही निर्धारित किया करती है।

ये एव एतादृश अन्य अनेक प्रकार के विचार मेरे मस्तिष्क मे उस वक्त आ रहे थे, जब मैं विलिग्डन हवाई अड्डे के स्वागत-गृह मे खडा हुआ था। पृथ्वी की भाति गोलाकृतिवाले दालान मे अनेक स्त्री-पुरुष एकत्र थे। इस समुदाय मे सत्ता के सिहासन के चौथे खबे के प्रतिनिधि (पत्रकार) विशेप दौडधूप मे थे। गत चौबीस घटो मे हम किस तरह व्यस्त रहे, समाचार कैसे प्राप्त किये, कसा समाचार लिख भेजेंगे, यही उनकी बातचीत का विषय था। दो-चार आदमी इकट्ठे हुए कि "वार्ता वधू धनादिक" की चल पडी है। दो-चार पत्र पंडित एकत्र हुए कि समाचार किस प्रकार हस्तगत किया, ि..स प्रकार घडा, इन्ही बातो की चर्चा होती है। इन पत्र-पडितो मे विदेशी सवाददाताओ के साथ-साथ देशी सवाददाता भी थे, पर उनका यह देशित्व और विदेशित्व केवल रग से ही पहचाना जा सकता था। कारण, वेशभूषा से सभी विदेशी थे। किंबहुना देशी-भूषा मे भारतीय सवाददाता उतना ही दुर्लभ एव विस्मयकारक है जितना कि व्यापार मे कोई महाराष्ट्रीय।

उस समुदाय के लोगो को देखने के पश्चात यह देश गरीब है ऐसा किसी को अनुभव नही हो सकता था। उपस्थित स्त्री-समुदाय तो मानो विवाह समारम्भ के ठाठ मे था। दिल्ली के राजकीय वर्तुल मे विचरण करने वाली स्त्रियो को देखकर कोई भी दर्शक यही कहेगा कि वेश-भूषा के बारे मे तो ये सारे जगत् का नेतृत्व अवश्य स्वीकार कर सकती हैं। एक दर्जन से ज्यादा ही केमरा`न वहाँ मौजूद थे। कदाचित उनकी मौजूदगी के

कारण ही लोगो की वेश-भूषा मे इतनी स्वच्छता दिखाई दे रही थी। उनमे कुछ-एक इसके लिये विशेष प्रयत्नशील दीख पडते थे, और जनान्तिकतया कहता हूं, मैंने भी थोडा-सा प्रयत्न किया। पर बगैर इस्त्री का कोट सिर्फ हाथ फेरने से तो इस्त्री नही हो जाता न? अथच, मोटा-झोटा खादी का परिधान वस्त्र सवारने-ववारने से महीन तो नही हो सकता न? चन्द्रोदय की प्रतीक्षा करते समय जैसे तारिकाएं दिखाई देती है, तद्वत् नारी-समुदाय दिखाई दे रहा था। इतने मे पुच्छल नक्षत्र के सदृश विचित्रता मे ही अपने स्वभाव की सुसंगति दिखलाने वाला वेश किये एक व्यक्ति ने उस दालान मे प्रवेश किया। वह व्यक्ति थे राष्ट्रपति आचार्य कृपलानी। मेरे मन को थोडी तसल्ली हुई। आखिर एक व्यक्ति तो अपने-जैसा नज़र आया।

थोडी ही देर मे राजेन्द्र बाबू भी आ गये। हम तीनो बैंच पर बैठ कर नेहरूजी के आने की राह देखते रहे। घर से बाहर निकलते समय सारा घर छानकर किसी समय कात कर बनाया हुआ एक सूती हार पडितजी को पहनाने के इरादे से मै अपने साथ ले आया था। उस पर नजर गडाकर कृपलानीजी ने मुझसे कहा, "पडितजी इस हार पर प्रसन्न तो होगे नही, तब आप यह मुझीको क्यो नही पहना देते?"

मैने कहा, "लन्दन की यात्रा करने वाले के लिए है यह। इसमें अपनी गर्दन उलझानी हो तो इतना दिव्य (अग्नि-परीक्षा) कराना पडेगा।"

इतने मे जनसमुदाय के बीच गड़बड मच गई और मै उठकर प्रवेश-द्वार पर पहुचा। पंडितजी मोटर मे से बाहर आये। उनका स्वागत करके सूती हार तो मैने पंडितजी के गले मे पहना ही दिया। अनेक पुरुषो ने उनका स्वागत किया। अनेक व्यक्ति फूलो के हार लाये हुए थे। उनको

पंडितजी ने स्वीकार किया। पर गले मे उन्होंने सिर्फ सूती हार ही रखा। उस हार में अपनी अङ्गुली उलझाये हुए वह बोल रहे थे और विचार-मग्न भी दिखाई देते थे। उनके मन में उस समय कौन-से विचार चल रहे होगे, इस बात का मैं विचार कर रहा था। एकाएक लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व की एक घटना मेरी आखो के सामने आकर खडी होगई।

१६३१ का अगस्त का महीना होगा वह। गाधीजी "राजपूताना" नामक जहाज मे बैठकर गोलमेज-परिषद् मे भाग लेने के लिए लन्दन जा रहे थे। उस समय भी बम्बई बन्दरगाह में खडे हुए जहाज पर गाधीजी को विदा देने के लिए एकत्र हुए लोगो मे विद्यमान रहने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। भारत के एकमात्र प्रतिनिधि बनकर वह जा रहे थे। १६३१ के युद्ध के अनन्तर प्रभूयमान आशाओं और आकाक्षाओं का बोझ अपने ऊपर लिए हुए वे प्रयाण कर रहे थे। सत्य के अतिरिक्त उनका सहकारी और कौन था? सौजन्य के अतिरिक्त उनके पास कौन-सा शस्त्र था? दृढ़ विश्वास के अतिरिक्त उनका मार्गदर्शक कौन था? वह कुछ चिन्तित-से दिखाई देते थे। उनके प्रस्थान करने से पूर्व गुर्जर कवि मेघाजी का एक काव्य उन्हे भेंट दिया गया था। यह प्याला कडुआ है परन्तु उसे आप ही पी सकते है, यह उसका आशय था। उनके साथ उनके अनेक सहकारी जाने के लिए उत्सुक थे; पर किसी को नहीं लिया गया। भारतवर्ष का भाग्य भारत ही मे निर्मित होना चाहिए। ऐसा कहते हुए वे रवाना हो रहे थे। उन दिनों भी इतिहास बहुत ही वेग से क्रिया-शील हो रहा था। पर उसका क्षेत्र उन दिनों इंग्लैंड था। एक मन्त्रिमंडल की नीव हिल चुकी थी। उसकी जगह दूसरा मंत्रिमण्डल आ रहा था। निर्वाचन का आक्रोश आकर्षित हो रहा था। सबको ऐसा ही लगता था कि बस, स्वराज्य तो आन ही पहुँचा, कुछ महीनों की ही कसर है।

रात्रि शीघ्र ही समाप्त हो जायगी और शीघ्र ही प्रभात का उदय होगा। द्विरेफ के इस प्रकार आशा बाधकर बैठने पर जिस प्रकार गजराज ने आकर कमलवन को उद्ध्वस्त कर दिया, वैसा ही कुछ प्रकार इस देश मे भी हुआ। प्रचण्ड प्रभजन की भांति नादिरशाही शासन ने भारत को ध्वस्त कर दिया। समर क्षेत्र मे अजेय साबित होने वाले महात्मा ब्रिटिश लोकसभा की कुटिल नीति के समक्ष सर्वथा निष्प्रभ रह गये। थोडी ही देर मे स्वराज्य का सौदा तय हो जाने की आशा लगाये हुए राष्ट्र की दिङ्मूढ़ की सी अवस्था हो गई।

कदाचित्, कदाचित् ही कह रहा हूँ, नेहरूजी के मन मे भी गत इतिहास की स्मृतिया जागरित हो उठी हो? आज वह भी भारत के एकमात्र प्रतिनिधि बन कर जा रहे थे। सहकारियो को अपने साथ लेकर जाने की उनकी इच्छा तो थी, पर सहकारी कोई जाने को तैयार नही था। सलाहकारो की आवश्यकता थी, पर सलाहकार कोई बनने के लिए तैयार नहीं था। भारत के भाग्य को भारत मे ही तैयार होना है, यह निश्चित होजाने पर भी वह भारत से बाहर जा रहे थे। स्वातन्त्र्य की कीमत अश्रु, और रक्त के रूप मे भारत पर्याप्त अदा कर चुका है, इसका परिज्ञान उनकी मुख-मुद्रा पर से स्पष्ट व्यक्त हो रहा था।

भ्रूणहत्या करने वाली दाई

शौर्य, उदारता, बुद्धिमत्ता आदि गुणो से ही नेतृत्व की पूर्णता नही होती, यह इस काल का कटु अनुभव है। गत कुछ वर्षों मे, विशेषतः गत कुछ महीनो मे, तत्रापि गत कुछ दिनो मे, राजकीय क्षेत्रो मे जो घटनाएं घटित हुई है, उन्हे देखने पर कोई भी ख़म ठोक कर नही कह सकता कि मै ही मैदान मार लूंगा। कोई व्यक्ति कही पर बैठा हुआ किसी प्रकार का कूट-प्रपच कर रहा है और मुह तक आया हुआ कौर

छीन लेने के प्रयत्न मे लगा हुआ है, इस प्रकार का सदेह आज वातावरण मे सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। भाषा अर्थ के लिए नही प्रत्युत स्वार्थ के लिए है, ऐसा ही अनुभव हो रहा है। जन्म लेने वाले बालक को दाई ही गला दबाकर मार तो नही डालेगी, इस प्रकार की भीति आज बहुतो के मन मे उत्पन्न हुई हुई है। जमीन समझकर पैर रखने जाय और पैर जाकर पानी के प्रवाह मे गिर पडे, इस प्रकार का समोह उत्पन्न हो गया है और ऐसी इस विचित्र परिस्थिति मे पडितजी का बाहर जाना कहा तक योग्य है ऐसा प्रश्न अनेक के मस्तिष्क मे आता। ब्रिटिश राजनीतिज्ञो ने दोनो हाथो से दोनो पक्षो (काग्रेस और लीग) को आश्वासन दे रखा था, व्यक्त रूप मे तो दे ही रखा था, तब अव्यक्त रूप मे न दिया हो यह कैसे कहा जा सकता था? अर्धदृष्टि वायसराय (वेवल) अदूरदृष्टि तो थे नही, हां, दीर्घसूत्री अवश्य थे।

उत्सवमूर्ति तथा अन्तरमूर्ति

इतने मे 'खामोश खामोश' की मेघ-गर्जना हुई। विमानगृह के अधिकारी ने सूचित करते हुए कहा कि यात्रियो के अतिरिक्त अन्य कोई भी लोहे की सीखचियो से आगे न जाय। पडितजी ने भीड मे से निकल कर विमान की दिशा मे जाना आरम्भ किया। उन्ही के नभोवाणी द्वारा प्रसूत किये शब्दो मे कहा जाय तो दैव उन्हे सकेत कर रहा था। वह यदि अकेले का ही दैव लेकर जा रहे होते तो उसमे कोई बडी बात नही थी, पर वह तो अपने साथ चालीस करोड जनता के दैव को लेकर जा रहे थे।

समीपवर्ती एक पत्रपंडित ने मुझसे पूछा, "आपको क्या प्रतीत होता है?"

मैने कहा, "अब प्रतीति का प्रश्न ही नही रह गया है। अब तो देखने का प्रश्न रह गया है। हमारा उत्साह और हमारी उतावली

विलायत जा रही है और हमारा निश्चय एव निग्रह यही रह रहा है यह हमारे लिये सौभाग्य की बात है।"

उसने पूछा, "इसका अर्थ" ?

मैने कहा, सरदार पटेल देवालय मे सस्थापित अचलमूर्ति है और पडितजी उत्सवमूर्ति। सरदार निग्रह है। 'ना' कब कहना चाहिए यह केवल उन्ही को अवगत है। एतावता नेहरूजी के जाने मे खतरा भले ही हो पर भय की कोई बात नही।"

मैं कुछ अधिक नीति-पंडित हू, ऐसी उसकी धारणा हुई होगी, अतएव उसने अपना मुँह दूसरी ओर को फेर लिया।

एक मिनिट की 'गुफ्तगू'

गत छः महीनो की राजनीतिक प्रगति का जिसने अवलोकन किया है, वह यह अच्छी तरह जान गया होगा कि राजनीति मे दृढनिश्चयी एव कठोर व्यक्ति की कितनी अधिक आवश्यकता है। जो स्वय किसी के पास नहीं जाता, लोग उसके पास दोड-दोड जाते है। जो किसी से बोलने के लिए तैयार नही, उससे लोग बातचीत करने के लिए तैयार रहते है। जो यह स्वय नही बतलाता कि उसे किस वस्तु की आवश्यकता है, लोग उसी से जाकर पूछते है कि आप क्या लीजिएगा ? इन सब बातो का अर्थ हम कब समझेंगे ? हम अपनी स्वतन्त्र गति से क्यो न चले ? जब हमारी अपनी शक्ति आज हमारे लिए आधार बनी हुई है, तब हम परमुखापेक्षी क्यो रहे ? अपनी राजनीति के लिए जब हम स्वयंमेव सर्वसमर्थ है, ऐसी स्थिति हम अधीर वृत्ति होकर अविवेक पूर्वक अपना सर्वनाश क्यो करले ? अब हमारी स्वतन्त्रता को कोई हमसे दूर नही रख सकता। हम यदि चलने लगेंगे तो वे लोग जो स्तब्ध होकर हमारे पीछे खडे है, अपने आप ही गतिशील होकर हमारे मार्ग का अनुसरण करने लग जायेंगे, यदि हम यह

समझने लग जाय कि जो हमारे मार्ग मे रुकावटे पैदा करना चाहते है, उनके ऐसा करने से हमारा कुछ बिगडने वाला नही है, तो वे अपने आप ही सरल मार्ग पर आ जायेगे। पहले भ्रमणमार्ग का मानचित्र रेखाकित करके नदी के प्रवाह ने कभी अपना प्रगमन आरम्भ किया है ? नदी तो अपना मार्ग, अपना विस्तार एव अपनी व्याप्ति मार्गक्रमण करते-करते ही निर्धारित किया करती है। हवाई सेना के साथ वहा उपस्थित सारा जन-समुदाय जयहिद की गर्जना करने लगा। पडितजी ने राष्ट्रपति तथा राजेंद्र बाबू के साथ एक मिनिट गुफ्तगू की; हमारे साथ हस्तान्दोलन किया तथा सरदार बलदेवसिह का हाथ अपने हाथ मे लेकर वह विमान की ओर गये।

दो पखे

विमान का यन्त्र--गर्जन आरम्भ हुआ, पर एजिन का एक पंखा चल के ही न दे ! किसी ने कहा, जब तक दोनो पखे चलने न लग जाय यह उड़ेगा कैसे ? दूसरा कहने लगा, एक पंखा जोर से चालू हो गया तो दूसरा अपने आप ही चालू हो जायगा और मानो किन्ही घटमान एव घटिष्यमाण घटनाओ के प्रतीकस्वरूप एक पखा थोडी देर तक जोर से चलता रहा तत्पश्चात् दूसरा भी चालू हो गया और एक निमेष मे विमान भूमि से अलग हो गया। दो एक मिनटो मे आंखो से ओझल भी हो गया।

मै सोचने लगा काल किस वेग से आगे जायगा, यह नही कहा जा सकता। वह हमे पीछे की ओर भी ले जा सकता है। कारण, लंदन सदा से ही भारत की आशाओ की श्मशान-भूमि रही है। जिसकी इच्छा नही की वह प्राप्त हो और अपेक्षा नही की वह अनुभव मे आये, यही आज तक का इतिहास रहा है। एकत्र की हुई शक्ति वहा बिखर जाती है और

निश्चय धरा-का-धरा रह जाता है। यह होने पर भी विश्व के अनेक-अनेक राजनीतिज्ञो को लंदन का मोह हुआ करता है। अध्यक्ष विल्सन् की करुणावस्था लदन ही मे हुई। लीग और कांग्रेस वाले अपना सारा धोना लदन के ही धोबीघाट पर ले जाना चाहते हो तो वह इस देश के लिए एक महान् दुर्दैव की वस्तु होगी। आज देश मे प्राणहानि हो रही है उसी के साथ परदेश मे मानहानि होने वाली हो तो तो इस देश के दुर्दैव का अन्त नही, यही कहना चाहिए।

मै अपनी इस विचार तन्द्रा मे लीन था कि इसी बीच मैने किसी मजदूर को "चलो यार लंदन मे" यह गीत गाते हुए सुना। उसे कदाचित इस बात की कल्पना भी नही थी कि आज हो क्या रहा है? पर वह गीत इस बात का प्रतीक था कि सामान्य मनुष्य को किस प्रकार की प्रतीति होती है। मैने भी मोटर में बैठते समय अपने स्नेहियो से कहा, "चलो यार लंदन मे"। अबोध उत्साह भी जीवन की एक बडी भारी शक्ति है, क्यो सत्य है न?

गोटीराम भैया

असेम्बली भवन मे बैठा हुआ मैं पूना से आये समाचार-पत्र पढ़ रहा था। एक खबर से मालूम हुआ कि हमारे गोटीराम भैया का एकाएक देहान्त हो गया है। मार्च के पहले अठवारे मे चुनाव सम्बन्धी तूफ़ानी दौरा करता हुआ जब मै कुछ घटो के लिए पूना रुका था तभी गोटीराम भैया से मुलाकात हुई थी। चुनाव की बात आते ही जब गोटीराम भैया ने अपने एक-चौथाई सदी से परिचित स्वर मे बतलाया कि काम 'कम्पलेट' हो गया है तो मुझे बहुत ही आनन्द हुआ मै जानता था कि कांग्रेसी उम्मीदवारो के सम्बन्ध मे पूना मे अन्दर ही अन्दर कुछ अप्रशस्त एवं अप्रामाणिक प्रचार चल रहा है। गलतफ़हमी की आग दावानल की भॉति प्रज्वलित हो कर अभी तक बुझने मे नही आई थी। कार्यकर्त्ता तथा कमेटिया उदासीनता तथा उद्वेग की छाया मे कुछ कुम्हलाई हुई सी दिखलाई दे रही थी। नियामक मण्डल काफी जोश के साथ काम करता हुआ दिखाई देता था। तथापि ऐसा भास होता था कि कही पर किसी का मन आशंकित-सा है। इसी कारण जब भैया के आश्वासन से मुझे यह मालूम पडा कि मंडई

विद्यापीठ अपना बाजू सभाले हुए है तो मुझे आनन्द होना स्वाभाविक था।

गत चौथाई सदी के अपने सार्वजनिक जीवन मे मैने गोटीराम भैया को कभी कम महत्व का व्यक्ति नही माना। उनसे मेरा परिचय सर्वप्रथम सन् १९२० मे हुआ। असहयोग के उस प्रभात काल मे भैया का वह भव्य शरीर, विस्तृत भालप्रदेश, कदाचित इसी कारण नाराज होकर नीचे दबी हुई नाक, पहलवानी पेशे का रग-ढग तथा तडके-तडके धूप चढ़ आने तक साइकिल पर या पैदल हाथ मे तिरगा झडा लिए "देशाशी वणवा लागला, जन हो खादी वापरा" (देश मे प्रचण्ड दावाग्नि प्रज्वलित है, धारण करो हे जन खादी परिधान को) की निरन्तर चाल रहने वाली घोपणा—ये सब पूना के तत्कालीन इतिहास मे अमर रहने वाली बाते थी। और हम जैसे लोगो के लिए जिन्होने राजनीति के क्षेत्र मे नया-नया ही प्रवेश किया था, भैया एक गर्व की वस्तु हो गये थे। पूना की मडई (सब्जीमडी) क्या थी एक शक्ति का केन्द्र थी, गाधी-भक्ति का तीर्थ थी। निःस्वार्थ जन-सेवा का निवास-स्थान थी। उस समय के लोगो मे अहमद भाई तबोली प्रमुख थे। अहमद भाई एक बिनबोल मगर बिनमोल कार्य-कर्त्ता थे। मडई की वह मंगलमूर्ति थे। ... ... दोनो ही को उनके बारे मे आत्मीयता प्रतीत हुआ करती थी। गोटीराम भैया उनके दाहिने हाथ थे। पिकेटिग के अभियोग मे किस तरह उन्हे सजा हुई; उसके बाद मैने और भैया ने जेल मे जाकर म्युनिसिपल चुनाव के लिए किस तरह उनकी सम्मति प्राप्त की, कैसे उनका चुनाव हुआ, कैसी-कैसी मढई मे सभाये हुई; मेरे यह कहने पर कि रायबहादुर लल्लूभाई काग्रेस के उम्मीदवार नही है किस तरह सभा मे हंगामा मच गया, किस प्रकार मेरी रक्षा के लिए भैया ने मेरे चारो तरफ घेरा डाला, किस प्रकार परिवर्तन-वादियो और अपरिवर्तनवादियो मे तीव्र मतभेद होते हुए भी मुझ मे और

मंड़ईवालो मे अखंड और अबाधित मैत्री बनी रही ये सब बाते आज मेरी स्मृति मे अत्यन्त तीव्र रूप से आ रही हैं।

*   *   *   *

तीस और बत्तीस साल के आन्दोलन मे भैया ने कठोर कारावास सहन किया। सरकार की दृष्टि मे वह एक सामान्य मनुष्य समझे गये, इसीलिए दूसरा दर्जा दिया गया और हमे दूसरा। स्वभावतः अनेक बार एक ही जेल मे रहते हुए भी हम एक-दूसर से मिल नही पाये और न बातचीत कर पाये। पर बयालिस के आन्दोलन मे यह सब बदल गया। नो अगस्त के सुप्रभात मे बम्बई के सरदारगृह पर घेरा डालने वाले पुलिस वालो ने मेरा तथा जेधे का पीछा करके हमे शिवाजीनगर पर ही पकड़ लिया तथा वहा से हमे सीधे यरवदा पहुचा दिया। वहा दरवाजे पर सभाजी जेलर और भैया खडे हुए थे। भैया ने बताया कि उन्हे अभी-अभी पकड कर पहुँचाया गया है। उस दिन से लेकर मई १९४४ तक अर्थात् भैया की रिहाई होने तक भैया मेरे ही साथ रहे। यरवदा इडस्ट्रियल स्कूल, साबरमति और नासिक इन सभी जेलो मे वह मेरे ही साथ थे। मैने भी जोडतोड़ लगाकर भैया को "ए" क्लास डिटेन्यू के रूप मे रखने की व्यवस्था करवा दी थी।

जेल मे भैया का कमरा एक मदिर था। सामने छोटा-सा बगीचा, अन्दर अनेक देवताओ के चित्र और भक्तिविषयक ग्रन्थ। जिस प्रकार शरीर मे आत्मा निद्राधीन रहती है उसी प्रकार उन भक्तिविषयक ग्रन्थो के पृष्ठो मे "शाभवी" भरी हुई थी। हर रोज रात को भैया अपनी खजड़ी बजाकर भक्ति-मार्ग की पुकार लगाते और ज्ञानी तथा आर्त्त दोनो को अपने पास बुलाया करते थे। सहजानन्दस्वामी जैसे ज्ञान-मार्गी; साने गुरुजी जैसे भक्तिमार्गी; शीघ्र रिहाई की इच्छा से भजन मे भाग लेने वाले अनेक

आर्त; मेरे जैसे भजन-पूजा आदि वस्तुओ का उपहास करने वाले उपहासक, सभी भैया के कमरे मे एकत्र हुआ करते थे। ब्रह्मानन्द के पद, कबीर के दोहे, तुकाराम के अभंग आदि तो भैया सुनाया ही करते थे, इनके अतिरिक्त वह स्वकृत काव्य का भी रसास्वादन कराते थे। इडस्ट्रियल स्कूल के उपनिवेश में हमारे साथ कुछ साम्यवादो और समाजवादी युवक भी रहा करते थे। उन लोगो से मैंने कहा कि भैया की शक्ल कार्ल मार्क्स की शक्ल से मिलती है। इस साम्य के कारण ही उन नास्तिक लोगो में से भी कुछ लोग भैया की भजन मडली में शामिल होने लगे। भैया के भजन मे रौनक लाने के लिये तथा भक्ति के प्रादुर्भाव के लिए कैलाशपति के अत्यन्त प्रिय दो द्रव्यो की आवश्यकता रहती थी और उन वस्तुओ का अभाव न रहे इस बात का मुझे हर समय ध्यान रखना पडता था।

पूना से जिस समय हम पन्द्रह आदमियो को साबरमती भेजा गया था उस समय की घटना मुझे आज याद आती है। वहां जाने पर जब भैया को मालूम हुआ कि सामान की तलाशी लिये बिना हमे अन्दर नही जाने दिया जायगा तब उन्होने मेरी शरण ली, क्योंकि उनके पास ये चीजे भरपूर थीं। जेल के अन्दर के भाग मे दादा साहेब मावलकर हम लोगो के स्वागत के लिये चाय की तैयारी किये बैठे हुए थे। समस्या विकट थी, तथापि बडी युक्ति से मै पहरेदार की नजर बचाकर भैया की ये सारी चीजें फाटक की सीमा से उनके निवास-स्थान तक सुरक्षित ले गया। वहा भैया ने अपने गाने तथा भजन से साबरमती जेल के कैदियो के मन इस प्रकार मोहित कर लिये कि भैया के लिए आवश्यक पुरस्कार की बिलकुल कमी नही पडी। साबरमती से नासिक जेल के लिए प्रस्थान करने से पूर्व बिदाई देते समय लोगो ने अपने भाषणो मे भैया की जो प्रशसा की उसे सुनकर हम मे से कुछ को तो भैया की

लोकप्रियता पर कुछ ईर्ष्या ही हुई।

* * * *

नासिक की जेल वह भूमि है जिसे भगवान राम ने अपने पदक्षेप से पवित्र किया था। कौन कह सकता है कि उस स्थान पर विद्यमान वृक्षों की पक्तियों मे बैठकर अथवा गोदावरी के परिसर मे भटकते हुए प्रभु रामचन्द्र ने मानव-शत्रु दशानन के वध का निश्चय किया हो। मेरे कमरे के एक पार्श्व मे जेधे तथा दूसरे पार्श्व मे भैया रहा करते थे। बहुत सबेरे उठकर मै चार-पांच घंटे लेखन कार्य किया करता था। उस काम मे किसी प्रकार की बाधा न आये, इस बात का ध्यान ये दोनों सन्मित्र रखा करते थे। महीने पर महीने जेल मे ही व्यतीत होते जा रहे थे। यह देखकर नये तथा पुराने कार्यकर्त्ता थोडे निराश और अन्यमनस्क से हो गये थे। आरम्भ काल का उत्साह समाप्त होता जा रहा था। बहुतो की अध्ययन-शीलता क्षीण होती जा रही थी। खिलाड़ी वृत्ति चिडचिड़ी वृत्ति को जगह देने लगी थी। मुक्तमनस्कता उन्मनस्कता के रूप में परिवर्तित हो चली थी। यदि थोडे से लोगों को अपवाद मानें तो प्रायः सभी व्यक्तियो की मन प्रवृत्ति उदासीन होती जा रही थी। सहजानन्द स्वामी के चतुः सूत्री पर होने वाले विवेचन मे रस लेने वाला श्रोतावृन्द कम होता चला जा रहा था। अनेक विषयो पर व्याख्यान कराने के विचार से प्रारम्भ की गई व्याख्यानमाला नाममात्र के लिए ही अवशिष्ट रह गई थी। परन्तु हमारे भैया का भजन-क्लब नन्दादीप की भांति अखड रूप से लौ उठाता रहा, गंगा के प्रवाह की भाति वर्द्धिष्णु होता रहा। उस मंडली में मैं भी भाग लिया करता था।

१९४४ के मार्च का महीना था। महाशिवरात्रि थी। उस दिन मैंने 'राज्य शास्त्र विचार' नामक ग्रथ के लेखन को समाप्त करने का निश्चय कर

रखा था। हमारे मित्रो का यह निश्चय हुआ कि इस अवसर को एक समारम्भ के रूप मे सम्पन्न किया जाये। यह निश्चय हुआ कि शिवरात्रि के लिए अनुरूप प्रसाद शाभवी का सब को पान कराया जाय। इस आयोजन के लिए आवश्यक सामग्री जुटाने का भार हमारे सकलगुणसम्पन्न पाडुरंग (उत्पात) पर डाला गया। पाडुरग एक प्रकार के हमारे जेल जीवन के डाकिया थे। रिहाई की खबर वही लाया करते थे। किसी को किसी वस्तु की आवश्यकता होती तो उसको लाकर देने का चातुर्य उन्हीं मे था। डेढ़सो आदमियो को 'राज्य शास्त्र विचार' ग्रथ की समाप्ति के उपलक्ष्य मे भरपूर शाभवी पिलाने का श्रेय भैया ने हासिल किया और संयोग की बात यह है कि इस ग्रन्थ के प्रकाशन के समय अर्थात् गत गाधी जयन्ती के मौके पर भैया ने ही अगुआपन स्वीकार करके अपने खर्च से पेड़े बाटकर मिठास पैदा की।

* * * *

और आज यह सहृदय सहकारी विलुप्त हो गया है। व्यास की तरह खादी को कठरव से कामधेनु बताने वाले एक निस्सीम खादीभक्त को आज मृत्यु ने हम से छीन लिया है। फैजपुर काग्रेस के समय पूना से फैजपुर तक पैदल यात्रा करने वाला यात्री आज अपनी जीवन-यात्रा समाप्त किये बैठा है। अनेक बार अनेक वर्षो तक कारागृह मे अपना जीवन व्यतीत करने वाले एक फौलादी राष्ट्रभक्त को मृत्यु ने मृदु कर लिया है। मेरे मंडई विद्यापीठ का आद्य स्नातक आज "सा विद्या या विमुक्तये" इस महान् तत्व का आचरण करते हुए दिवगत हो गया है। भजन के वक्त भैया के चिर परिचित आवाज मे निकलने वाले शब्द आज भी मेरे कानो मे गूँज रहे है—"इस गाडी से जाने वाले, चलो तुम्हारी बारी है।"

और अपना समय आते ही भैया चले गये। एक सन्मित्र से, एक अनुयायी से, एक नागरिक से, अन्धेरी रात मे आवाज लगाते ही प्रत्युत्तर देकर तैयार रहने वाले अपने शरीर एवं कीर्ति के संरक्षक से आज मैं हाथ धो बैठा हूँ। भैया, समस्त महाराष्ट्र की ओर से तुम्हे मेरे शतशः प्रणाम।

अथ विमान मार्गेण

एक समय था जब मानव-जाति अनन्त आकाश मे उडान भरने वाले पक्षियों को देखकर उनके सौभाग्य के प्रति ईर्ष्या किया करती थी, पर आज वैसा करने की आवश्यकता नही रह गई है। इसी प्रकार किसी भी नई योजना को अव्यवहार्य सिद्ध करने के लिए यह कहना भी गलत होगा कि वह 'कल्पना के आकाश मे ली गई एक उडानभर' है। नये-नये शास्त्रो, विद्याओ और विज्ञानो का इतना कुछ आविष्कार हो गया है, नई-नई साधन-सामग्रियो के निर्माण मे मानव-जाति ने इतनी कुछ प्रगति कर ली है कि अब बहुत-से पुराने मुहावरो और कहावतो को बदल डालना पड़ेगा, जीवन सम्बन्धी अनेक अनुभवों को निरर्थक कहकर छोडना पड़ेगा तथा जीवन सम्बन्धी अनेक दृष्टिकोणो मे पर्याप्त सुधार करना आवश्यक हो जायगा। इस प्रकार के दार्शनिकस्वरूप के विचार मेरे मस्तिष्क में क्यो आ रहे थे, इसकी एक वजह थी। मैं स्वय इस समय जमीन पर नही था, जमीन से हजारो फुट की ऊचाई पर दौड लगाने वाले टाटा कम्पनी के एक हवाई जहाज़ मे बैठा हुआ था।

अपने कालेज-जीवन मे कालिदास द्वारा रघुवंश मे वर्णित राम और सीता के पुष्पक विमान मे बैठकर लंका से लेकर अयोध्या तक किये गये प्रवास का वृत्तात पढ़ रखा था। इसी प्रकार विरही यक्ष ने मेघ को अपना दूत बनाकर आकाश के अनन्त विस्तीर्ण प्रदेश मे से होकर गुजरते समय कही राह न भटक जाये इसलिए जो मार्ग के निश्चित सकेत बताये थे वे इस समय भी, जबकि मेरी रसिकता की उम्र समाप्त होने को आ रही है, स्मृति-पटल से पूर्णतया पुछ नही गये थे। यह ठीक है कि मैं इस समय राम के समान किसी जोडे के रूप मे यात्रा नही कर रहा था, और न मेरे पास किसी विरहपीडित व्यक्ति के दूत का ही काम था। इस दीन दुर्गत देश के करोडो रुपयो से संबन्धित विषयो के बारे में निर्णय करने के लिए नियुक्त विधान परिषद् की समिति के काम पर मै जा रहा था और एक प्रसंग आ पडा था इसलिए आकाशमाग से जाना मेरे लिए आवश्यक हो गया था।

कांटे और—

टाटा कम्पनी के टिकट घर में "पंच पच उषः काले" जब मै उपस्थित हुआ, उस वक्त वहा का ठाठबाट देख कर मेरी अवस्था एक नन्हे मुन्ने की-सी होगई हो तो इसमे अचरज की कोई बात नहीं। दीवार पर भारतवर्ष का एक सचित्र नक्शा बना हुआ था। भारत के भिन्न-भिन्न स्थानो पर भिन्न-भिन्न वस्तुओ के चित्र दिखाये गये थे। बम्बई मे भारत की टकसाल है, अतः वहा ऐसा चित्र बनाया था कि पैसे बन कर बाहर आ रहे है। दिल्ली के चित्र में एक सरकारी अफसर दिखलाया था जिसकी मेज पर फाइलो का बडा भारी ढेर है और एक ओर लाल फीतो का गुच्छा पडा हुआ है। सिंध हैदराबाद में हूरो का उपद्रव उनकी डाकेजनी का दृश्य दिखलाकर मानो मुस्लिम लीग की नीति का ही मूर्त चित्र खीच

दिया था। इसी के साथ किसी भी स्वातन्त्र्य वीर के अन्तःकरण को ठेस न पहुंचे इस बुद्धि से नेपाल की सरहद पर एक हाथ मे कुकरी और दूसरे हाथ में ताजा-ताजा कटा हुआ आदमी का सिर लिये हुए शिखावान्, हिंदू धर्म का भाग्य विधाता, गुरखा चित्रित कर रखा था।

इस नक्शे की ओर मैं बहुत देर तक खडा देखता रहा। पर जब वहां के एक अधिकारी ने जरा रोबदार आवाज में मुझसे पूछा कि 'आप मुसाफिर हैं?' तब मेरी यह विचार-तन्द्रा टूट गई। मेरी ग्रामीण पोशाक को देखकर उसे कदाचित् ऐसा प्रतीत हुआ हो कि यह कोई बाहरी आदमी यो ही देखने के लिए इस जगह चला आया है। मैने कहा, 'हा'; साथ ही मैने अपने चमडे के बेग की ओर उसका ध्यान आकर्षित किया। इस बेग पर मेरे विचारशील पुत्र ने मेरे नाम और पद का ज्ञान करानेवाले अक्षर इस प्रकार लिख कर रखे थे कि धुधली नजर वालो को भी उनका पता चल जाय। कहने की जरूरत नही कि उन अक्षरो को देखते ही उस अधिकारी के व्यवहार में 'हृदय-परिवर्तन' सा दृष्टिगोचर हुआ। रेलवे में जितना सामान मुफ्त मे एक यात्री ले जा सकता है, उतना ही यहा पर भी ले जाया जा सकता होगा। इस विचार से अस्मदादिक (हम) ने अपने साथ सामान लिया हुआ था। जब उस सामान को तोला गया और उसके अधिक पैसे मागे गये तब मालूम पडा कि एक बिस्तर की जितनी कीमत है उतना ही दिल्ली तक का उसका हवाई जहाज का किराया है। और इसके बाद जब उस अधिकारी ने मुझे भी तुलायंत्र पर खडा होने के लिए कहा, तब यह व्यक्ति अपने वजन के अनुसार तो कही किराया वसूल नही करेगा ऐसी भीति उत्पन्न हुई।

राजनीतिक वजन बहुत शीघ्रता से बढ़ता और घटता है; पर शारीरिक वजन शीघ्रता से घटता नहीं, यह तो स्पष्ट ही है। जेल में काली टोपी

वाले कैदी इस प्रयत्न मे रहते हैं कि उनका भार कम हो जाय। इसके लिए वे रोज दौड लगाते हैं, अथवा अन्य अनेक प्रकार की दवाइया लेते हैं। इसके लिए कुछ समय की भी अपेक्षा रहती है। पर यहां तो एक निमेषार्ध में ही वजन किया जाने वाला था। सामने कांटा (तुला-कंटक), शरीर पर कांटा (भीति-निर्मित रोमाञ्च कंटक) और अधिक किराया मांग बैठे तो बटुए पर भी काटा (संकट) ऐसा कुछ टेढ़ा प्रसंग उपस्थित था। तथापि अपने कुलदेवता का स्मरण करके मैं उस तुलायंत्र पर आरूढ़ हो ही गया। अन्त मे वजन किये जा चुकने के बाद जब उस अधिकारी ने कुछ भी नही कहा, तब बहुत आनन्द हुआ। इस गडबडी में हाथ में पकड़ने के डाक्युमेंट बेग का वजन करना रह ही गया। पूना निवासियो की सहज चतुरता के साथ मैं उस बेग को हाथ मे लेकर जिस गति से सभामंडपो में प्रवेश किया करता था, उसी द्रुतगति से उस कम्पनी की बस में जा बैठा। अपनी इस चतुराई पर मैं मन-ही मन बडा खुश हो रहा था। पर इतने मे नारियल के पेड जैसा ऊंचा पूरा, गज भर चौडा एक अंग्रेज भी अपने हाथ में वैसा ही बेग लेकर तुलायंत्र पर खडा हुआ। कम्पनी वालो ने उससे कुछ भी अधिक पैसे नही लिये। तब कही मेरे ध्यान मे आया कि जिस बात को मैं अपना बडा भारी पराक्रम समझ रहा था, वह और कुछ नही निपट लडकपन था।

गुलाब

तड़के-ही-तडके बम्बई की महालक्ष्मी को बाईं ओर छोडकर हमारी गाडी शांताक्रूज के हवाई जहाज के अड्डे पर पहुँची। वहा चाय का इन्तजाम था। बिस्कुटो का भी ढेर-सा पड़ा हुआ था। पर यह मुफ्त का था या दामो का था, इस बात का ठीक से अन्दाजा न लग सका। अतः अस्मदादिक (हम) ने सिर्फ चाय से ही काम चला लिया। परिचारिका

बिस्कुटो को आगे करते हुए बारबार हमसे उन्हे लेने के लिए आग्रह करती थी। पर मैं हर बार यह दिखाने का प्रयत्न करता कि मैं 'कम खाओ' के मत को मानने वालो में से एक हूँ।

इतने मे भोपू की एक आवाज हमने सुनी। इसका सकेत यह था कि ठीक साढे छः बजे मुसाफिर लोग हवाई जहाज के पास जाय। हम सब स्त्री-पुरुष मिलाकर कोई पन्द्रह के करीब होगे। हम लोग विमान के साथ लगाई हुई सीढी पर से होकर विमान में जाकर बैठ गये। अनेक बार आकाश मे उडने वाले विमानो को मैंने देखा था पर उसे समीप से देखने का जीवन मे यह पहला ही अवसर था। एक विशालकाय सामुद्रिक मत्स्य की-सी उसकी आकृति थी। जिस प्रकार बसो मे मुसाफिरो के बैठने के लिए इन्तजाम रहता है ठीक वैसा ही कुर्सियो आदि का इन्तजाम यहां भी था। जुडवा कुर्सियो की सात पक्तिया थी और इकहरी कुर्सियो की सात; इस प्रकार कुल जमा इक्कीस मुसाफिरो के बैठने के लिए उसमें इन्तजाम किया हुआ था। कुर्सी पर बैठने के बाद यंत्र के चालू होने की आवाज़ आने लगी और जमीन पर ही लगभग आधा मील दौड़ लगाने के पश्चात् वह जमीन से अलग हो गया।

विमान मे यात्रियो की सुविधा की देखरेख के लिए दो परिचारिकाए नियुक्त थी जो यात्रियो को कान में डालने के लिए रुई दे रही थी। उनकी उस नीली पोशाक को, पाउडर से शुभ्र हुए बदन को और लिपस्टिक से रक्तवत् रंजित ओष्ठयुग्म को देखकर किसी भी 'वेदाभ्यास जड' मनुष्य का हृदय क्षण भर के लिए काव्यमय' हो उठता। चूकि यह यात्रा आकाशमार्ग से हो रही थी अतः स्वभावतः मुझे मेघदूत की "ईषत श्यामा, शेष विस्तार पाण्डु" वाली पक्ति स्मरण हो आई। अन्तर इतना ही था कि उसमें ईषत श्यामा' लिखा हुआ था और यहा मामला

था 'ईषतरक्ता' का ! हवाई जहाज की घरघर इतनी ज्यादा थी कि आपस में एक-दूसरे से बातचीत करने मे भी आज़ाद मैदान मे भाषण देने से कम शक्ति नही लगती थी। ये परिचारिकाए या परिया, जब हवाई जहाज जमीन से ऊपर की ओर उडने लगा तब हरएक यात्री से पट्टा बाधने के लिए कहने लगी। दूर से कहे तो किसी को सुनाई न दे; अतः हरेक के कान के पास मुंह लेजाकर उन्हे कहना पडता था। यात्रियो मे कुछ 'रसिक' यात्री भी थे, वे ऐसा दिखावा करते थे कि उन्हे उन परिचारिकाओ की बात कुछ भी सुनाई नही दी। जहाँ एंजिन रहता है उस भाग के द्वारदेश पर बिजली के प्रकाश मे अग्रेजी मे पट्टा बाधने का आदेश लगा हुआ मैने देखा और तत्काल ही कुर्सी से बधा हुआ वह पट्टा मैंने बाध लिया। जो लोग स्वय यह नही कर सकते थे उन्हे पट्टा बाधने का काम भी परिचारिकाओ को करना पडता था। फलतः उन यात्रियो को न केवल दृष्टि-सुख का अपितु ईषत् स्पर्श-सुख का भी लाभ हो जाता था। मैं चूंकि इतना 'आधुनिक' तबियत का नहीं था, और समाजवादी नीति में उतना परिपक्व नही था, इसलिए स्वातत्र्य का उपार्जन जिस प्रकार व्यक्ति को स्वय करना चाहिए उसी प्रकार यह 'बधन' का कार्य भी मैंने स्वयमेव कर लिया। ऊखली से जैसे श्रीकृष्ण को बाध दिया गया था वैसा ही कुछ दृश्य अपनी-अपनी कुर्सियो से बधे हुए इन यात्रियो को देखने पर आखो के सामने उपस्थित होता था। विमान जब खूब ऊंचाई पर चला गया तब हमने अपना यह बधन खोल दिया। मानो परिपूर्ण विलास के उपभोगार्थ इन बधनकारी मेखलाओ को हमने निकाल फेका हो। अब हमारी वायुयान की वास्तविक यात्रा आरम्भ हुई।

सोने की साबरमती

पास के काच के रोशनदानो मे से नीचे झाक कर देखने पर नीचे के खेत ऐसे नजर आते थे जैसे कि नाना प्रकार के रंगो वाले चिथडो को सीकर बनाई गई गुदडी नजर आती है। खेतो को देखकर ऐसा भी मालूम पडता था मानो बडे-बडे मैदानो में छोटी-छोटी बावियाँ फैली पडी हो! हम समुद्र के किनारे-किनारे चले जा रहे थे। एक नदी के बाद दूसरी नदी समुद्र मे छलाँग मारती नजर आती थी। कालिदास के द्वारा वर्णित "पिबत्यसो पाययते च सिन्धुः" का यथार्थ अनुभव इस क्षण मुझे हो रहा था। किसी एक बडो नदी से मिलनेवाले छोटे-छोटे जलप्रवाहो को हम देखते थे तो ऐसा प्रतीत होने लगता था मानो किसी बडी-बडी टहनियो वाले पेड की छाह जमीन पर पडी हुई हो! रेलवे लाइन रोमराजी की भाँति भासित होती थी। किसी अस्पष्ट स्वरूप के हिलने डुलने को देख कर हम कल्पना कर सकते थे कि खेतो मे हल जोता जा रहा है।

प्रति घटे विमानवाहक कार्ड पर यह सूचित किया जाता था कि हम अब किस स्थान पर हैं, कितनी ऊंचाई पर है तथा किस वेग से उड रहे है। बाहर के तापमान का पता भी वह देता जाता था। दस हजार फुट की ऊंचाई पर प्रति घटा १७५ मील की रफ्तार से हम जा रहे हैं, अब हमारा विमान सूरत पर है, बाहर का तापकान १५ है और ठीक ८ बजे हम अहमदाबाद पहुंच जायेंगे यह भी उसमे बताया हुआ था। बाहर कल्पनातीत नयन-मनोरम दृश्य आँखो के आगे आते थे और इधर अन्दर परिचारिकाएं मुस्कराती हुई 'आपको चाकलेट चाहिए?' 'विमान-यात्रा के कोई विकार तो नही हुए न आपको?' 'कोलेन वाटर लाऊं आपके लिए?' इत्यादि प्रश्न पूछती थीं।

बाहर के सफेद बादलो को कभी एक ओर को धकेल कर, कभी उन्हे

नीचे करके तो कभी स्वय उनके नीचे से निकलकर विमानवाहक हमे यह 'धर्मशिक्षा' पढ़ा रहा था कि 'साधनानामनेकता' (स्व० लो० तिलक का वाक्य) ही अपने ध्येय को हस्तगत करने का श्रेष्ठ उपाय है। अन्दर और बाहर के शुभ्र मेघो की भाति ये दोनो परिचारिकाए विद्युल्लता की तरह इधर से उधर आती-जाती थी। और इस बीच विद्युल्लता की कौंध के पश्चात् जैसे झझावृष्टि आती है उसी प्रकार बाहर काले बादल नज़र आने लगे। बरसात की झडियाँ शु ु हो गई और प्रदर्शनियो के हिंडोलों की तरह हमारा विमान क्षण मे ऊपर तो क्षण मे नीचे होने लगा। बोर्ड पर फिर पट्टे बाँध लेने का आदेश दिखाई देने लगा। पाँच मिनटो मे ही मुसाफिरो की हालत बुरी हो गई, कुछ को उलटियाँ भी हुई। परिचारिकाएं मुस्तैदी के साथ इधर-उधर जा रही थी। स्मेलिग साल्ट तथा कोलन वाटर की पट्टियाँ बाँध रही थी। मैं सोचता था, शायद मुझे भी ये विकार होगे और उन परिचारिकाओ के धात्रीकार्य का कोमल अनुभव प्राप्त करने का अवसर मुझे भी मिलेगा। पर मुझे कुछ भी नहीं हुआ। मैं तो 'स्थाणुरयं पुरुषः' की भाँति सर्वथा निर्विकार अवस्था मे था। केवल 'रसिकता' के लिए कुछ करे तो उसकी भी अब उम्र नहीं रह गई थी। इसके अतिरिक्त यह भी डर था कि अगर ऐसा-वैसा कुछ कर बैठूं तो कोई गेस्टापो इस गल्प को कुछ और नोन-मिर्च लगाकर पुण्यपत्तन तक पहुँचाये बगैर नही रहेगा।

दस मिनटो तक इसी वातावरण मे हमारे विमान ने यात्रा जारी रखी और ८। बजे के लगभग मिलो की ऊंची-ऊची चिमनियो से विभूषित अहमदाबाद की नगरी दिखाई देने लगी। साबरमती नदी शहर के बीच मे से अपने पूरे यौवन में उमडी बह रही थी; और बिजली के कारखाने के पास वाली साबरमती जेल का, जहा कुछ काल के लिए मैं भी रह चुका

हू , परकोटा दिखाई दे रहा था। युद्धकाल मे आप लोग यदि अपने मालिको से किसी किस्म का झगडा या असहयोग न करे तो यह साबरमती 'सुवर्णमती' हो जायगी ऐसी वल्लभभाई पटेल ने घोषणा की थी। वस्तुस्थिति भी वैसी ही है। करोडो ग्राहको को नग्न तथा अर्धनग्न रखकर मिल मालिको ने अपनी चादी बनाई, यह तो सर्वविदित वस्तु है। स्मृद्धि का उन्माद ही मानो इस उमड कर बहने वाली साबरमती के पानी की शक्ल मे दिखाई दे रहा था। "दूरस्थ भूधरा रम्याः" यह भले ही सत्य हो तथापि अहमदाबाद की मैली-कुचली बस्ती दस हजार फुट ऊचाई पर से भी वैसी ही दिखाई देती थी। जिस जगह सत्याग्रहाश्रम हो वही काले बाज़ार का विद्यापीठ भी हो, जहॉ सर्वसगपरित्यागी महात्मा रहता हो वही गरीबो के चीथडो तक को खसोट लेने वाले महाभाग निवास करते हो, यह बात इसी तथ्य पर प्रकाश डालती है कि यह विश्व द्वैत से भरा हुआ है।

भूमिगत हुये !

अहमदाबाद शहर पर से होकर हवाई अड्डे पर उतरते समय इस प्रकार के विचार आये बगैर न रहे, यह सच है। हवाई जहाज जब नीचे उतरने लगा उस समय फिर 'पट्टे' बाधने का आदेश मिला और कुछ ही मिनटो में हम "भूमिगत" हो गये। अहमदाबाद के हवाई अड्डे पर हमें जो न्याहार (नाश्ता) दिया गया, उसमे क्या था यह बताकर मैं सनातनी पाठको के हृदय को ठेस पहुचाना नही चाहता पर इतना मै अवश्य कहूंगा कि इन यात्री हिन्दुओं मे से बहुतेरे मु जे प्रणीत सिद्ध होते है। उपहारगृह के बटलर ने मेरी विचित्र वेषभूषा को देखकर भी जब लज्जापूर्वक मुझे कुर्निसात किया तो उसे मैने भी बख्शीश दी। कुछ ही देर मे हम फिर आकाशमार्गी हो गये।

बम्बई से अहमदाबाद तक व्यवस्था यह थी कि एक ओर जमीन, दूसरी ओर समुद्र और हम आकाश मे। अब एक दृष्टि से चारो पार्श्वों मे जमीन तो एक दृष्टि से आठो दिशाओं मे अनन्त आकाश—यह अवस्था हो गई। अवली के जैसे बडे-बडे पर्वत, दिवाली के दिनो मे किले के नजदीक छोटे-छोटे बच्चे जिस प्रकार पहाडियो का रन करते है वैसे दिखाई देते थे। राजपूताने के गावो का ढब कुछ भिन्न प्रकार का था। बहुत से गावो मे बडे-बड़े तालाब नजर आते थे। दाये हाथ की ओर से उदयपुर पीछे छोडकर हम आगे बढ रहे थे। उदयपुर को मैंने बहुत बार देखा है इसलिए उसे देखने पर अनेक बाते हठात् ध्यान मे आ गईं। कुछ ही क्षणो मे हम जयपुर पहुच गये। मतलब जयपुर नगर के ऊपर के अत.रक्ष मे आ गये। रेखाबद्ध एवं सुन्दर गलीचा जिस प्रकार प्रतीत होता है। वैसा यह जयपुर शहर अन्तरिक्ष से देखने पर प्रतीत होता है। हमारा विमान पलको ही पलको मे प्रति घण्टे १७५ मील के वेग से दिल्ली की ओर झपटता चला जा रहा था।

दिल्ली की परिचित वस्तुएँ दिखाई देने लगी। वह पुराना किला, वह कुतुबमीनार, व सेक्टेरियट की इमारत, वह सभागृह धीमे-धीमे दिखाई देने लगा। प्राचीन वैभव तथा वीरकृतियो वाले शहरो को हम पीछे छोड आये थे। आधुनिक जग को हम समीप कर रहे थे। राजपूतो के वैयक्तिक शौर्य की कथाएँ आज इतिहास की वस्तुये रह गई है, उन्ही शूर राजाओ के वंशज घोड़ो का उपयोग युद्धकालिक आक्रमण-कार्य के लिए न करके रेस (घुड़दौड) के लिए करने लग गये हैं। जिन लोगो ने कभी प्रतिज्ञा की थी कि दिल्ली को जीते बगैर हम सोने के थालो मे भोजन नही करेंगे, कोमल शय्या पर नही सोयेगे, वही लोग आज दिल्ली की प्रचलित राज-सत्ता के गुलाम बने हुये हैं। उनके राजमहल भी वाइसराय के राजमहल के

आस-पास बस गये। तलवार की खनखनाहट की जगह प्रस्तावो पर सशोधनो और उपसशोधनो की आवाज ही आज यहा सुनाई देती है। राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य की आकाक्षाओ के स्थान पर आज किस जाति को कितनी नौकरिया मिलती हैं, इसी का ऊहापोह रातदिन चलता रहता है। अपने सिरो को अपने हाथ की तलवार ही से काटकर मातृभूमि के चरणो पर भेंट चढाने की अहमहमिका के स्थान पर आज लोगो की अहमहमिका इस बात मे है कि कौन गुलामी मे बाजी मार ले जाता है। यह सब कुछ करते हुए भी इस बात का एक अहंकार उसी प्रकार बना हुआ है कि, हम जो कुछ करते हैं सब बिलकुल ठीक ही करते है। मराठो के पूर्वज दिल्ली को जीतने के लिये आये थे, सुलहनामे करने के लिए आये थे 'शापादपि शरादपि' के न्याय से दिल्ली के सिहासन पर बैठने या उसके टुकडे-टुकडे करने के लिए आये थे, पर आज के उन्हीं के वशज यहाँ किस लिए आये थे?—यह प्रार्थना करने के लिए कि तीन पैसे के कार्ड की कीमत कम करके दो पैसे कर दी जाय।

जब मैं दस हजार फुट की ऊंचाई पर से नीचे उतर रहा था उस समय मेरे मस्तिष्क मे इस प्रकार के अनेक विचार घूम रहे थे। विमान जमीन पर आया, मन के अन्तर्गत विचारो ने वस्तुस्थिति का ज्ञान करा दिया और मैं समझता हूँ, डेढ सौ रुपये खर्च करके किये गये इस प्रवास का इतना फायदा भी क्या कम है?

क्या हमें भी मताधिकार रहेगा ?

अर्धनग्न, अधपेट, पूर्ण अज्ञानी, पूर्णतया निराश इत्यादि स्वरुप का वर्णन जिस प्रदेश के खेतिहरो के सबंध मे किया जा सकता है, अब से ठीक चौबीस घंटे पहले मै उस प्रदेश मे था और लगभग यही-का-यही वर्णन आज से तीस वर्ष पूर्व की रूस की परिस्थिति के लिए भी उपयुक्त बैठता है।

"इस अवनत, असगठिन अवस्था मे से आज का प्रभावी एवं पराक्रमी रूस किस प्रकार निर्मित हुआ ? दीन एव दुर्बल खेतिहर तीस वर्षो मे मानो ओर स्वाभिमानी कैसे बन गया ? नादान ओर अज्ञानी अन्धश्रद्धा और मूर्खतापूर्ण धारणाओ का दास आज पुरोगामी और प्रगतिप्रिय कैसे हो गया; रूस के साफल्य का रहस्य किस बात मे है ? यह जादू किसने कर दिखाया है ?" ये शब्द २२ फरवरी के दिन लाल सैन्य के वार्षिक दिवस के निमित्त बम्बई मे आयोजित सभा के अध्यक्ष-पद से दिये गये भाषण के प्रारम्भ मे मेरे मुंह से निकले।

यह समारम्भ कामा इन्स्टिटयूट हाल मे हो रहा था। सैकड़ों नागरिक उस सभा मे उपस्थित थे। विशेष महत्व की बात यह कि इस सभा में ब्रिटिश सैनिक और नाविक दल के सैनिक भी बहुत बडी सख्या में उपस्थित थे। सोवियट मित्र संघ की ओर से यह समारम्भ किया जा रहा था। इस संघ के बारे में लोगो की राय यह थी कि यह साम्यवादी लोगों के रंगरूट भर्ती करने का एक प्रधान साधन है। सोवियट तत्वज्ञान के सबध में पूर्णतया सहमत न होते हुए भी ऐसा मानने वालो की संख्या कम नहीं है जो उसके ग्राह्यांश को स्वीकार करने के लिए तय्यार हैं।

साम्यवादियों की देश-सेवा

भारतीय साम्यवादियो ने '४२ के आदोलनकाल मे जो भूमिका स्वीकार की थी, उनके नेताओ ने जो वक्तव्य प्रकाशित किये थे, उस पक्ष के सभासदो ने जो देश-सेवा की थी, उसके कारण काग्रेस के सर्व-सामान्य कार्यकर्तागण बुरी तरह बिगड़े हुए थे। किन्हीं-किन्ही कार्यकर्ताओं को सभाओ मे साम्यवादी पक्ष का तथा कार्यकर्ताओ का किसी भी अवस्था में साथ न देने के सम्बन्ध मे प्रस्ताव पास किये जा चुके थे। कुछ कार्य-कर्ता तो कहते थे कि कम्युनिस्टो के साथ किसी प्रकार का सामाजिक संबंध भी न रखा जाय। इन सारी प्रवृत्तियो एवं मतप्रणालियो का प्रतिबन्ध महाराष्ट्र की राजनीति पर भी पडा था। यह होते हुए भी इस समारम्भ का अध्यक्ष-पद मैंने जो मंजूर किया था, वह पूर्ण विचार तथा अपने साथियों की सलाह लेने के बाद ही किया था। इस मौके का पूरा फायदा उठाते हुए मैंने यह प्रदर्शित करने का निश्चय किया था कि साम्यवादियो की "[illegible]" की भूमिका कितनी अशुद्ध है। साम्यवादी पक्ष ने देश के तथा काग्रेस के विरुद्ध जो सबसे बडा अपराध किया था, वह उनका इस मौजूदा युद्ध को "लोकयुद्ध" कहकर उसे नैतिक पृष्ठपोषण प्रदान

करना था । इस पक्ष ने प्रत्यक्ष युद्ध में भले ही भाग न लिया हो, उसने रंगरूटों की भर्ती न की हो, अन्य सब बातों में उसने कांग्रेस की ही बात मानी हो, राष्ट्रीय सरकार की मांग, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य, नेताओं की रिहाई आदि के बारे मे उसने भले ही निष्ठापूर्वक आंदोलन किया हो तथापि इन कारणो से उसके उपयुक्त पापों का प्रक्षालन हो गया, ऐसा मानने के लिए मैं कभी तैयार नही था । इसलिए जेल से छूटकर आने के पश्चात् मैं उनसे असहयोग न करके जब भी कभी मुझे मौका मिलता मैं इस बात का स्पष्टीकरण किया करता था कि उनकी यह "लोकयुद्ध" की कल्पना अशुद्ध है । उन लोगो की कदाचित् मेरे बारे में यह धारणा रही हो कि समारम्भ के लिए आमंत्रित यह मेहमान हमारे विरुद्ध क्या भाषण देगा ? सोवियट सैन्य के समारम्भ अवसर पर उन्हे एक कांग्रेसमैन की आवश्यकता थी । मुझे बम्बई की सयानी जनता के सामने कांग्रेस की युद्ध-विषयक नीति का खुले तौर पर स्पष्टीकरण भी करना था ।

रूस की सफलता का रहस्य

उपस्थित जनसमुदाय मे बम्बई के सब पक्षों के लोग तो थे ही पर उसमें, अधिक महत्व की बात यह थी कि, लगभग सौ के करीब ब्रिटिश सैनिक भी थे। इसे ध्यान में रखते हुए मैंने कहा, शस्त्रास्त्रो की अपेक्षा दृढता ही सफलता की सबसे श्रेष्ठ मनोवृत्ति है । इस मनोवृत्ति के तैयार होने के लिए देश के जीवन की अनुरूपता का होना आवश्यक होता है। फ्रास ने शरणागति स्वीकार कर ली पर फ्रांस की अपेक्षा भी कई गुना अधिक जोर का हमला होने पर भी रूस ने हार नहीं मानी । उसकी इच्छाशक्ति अवनत नहीं हुई, उसकी गर्दन नहीं झुकी । इसके रहस्य को हमें जानने की कोशिश करनी चाहिए । लड़ने वाले प्रत्येक सैनिक को, राष्ट्रवादी प्रत्येक नागरिक को, इस बात की प्रतीति रहती है कि देश उसका अपना है । राष्ट्र की

संपत्ति का निर्माण उसी ने किया है। इस बात का अभिमान तथा उसका बटवारा न्याय के अनुसार होगा ऐसा अनुभव एवं विश्वास उसे रहता है। राज्य जनता का है और वह वास्तव मे जनता ही के लिए है। इस बात का विश्वास ही रूसी सेना के पराक्रम का कारण है। देश पर आक्रमण होने से सामान्य जनता दुर्दशा को प्राप्त होगी, देश की विजय होने से सामान्य जनता की ही उसमे विजय है, यह समीकरण वहाँ पर विद्यमान है। अतः उस देश के लिए वह लोकयुद्ध है। वहाँ कोई यह घोषणा करके सैनिको की भर्ती नही करता कि तुम्हें १६ रुपया पगार (वेतन) तथा खाना और कपड़ा-लत्ता मुफ्त मे दिया जायगा इसलिए फौज में भर्ती हो जाओ। अपने देश मे इ "लोकयुद्ध" का नाम देना हास्यास्पद ही है। इस प्रचलित युद्ध को यदि उत्पत्ति, स्थिति और लय इन तीनो की कसौटियो पर कस कर देखा जाय तो भारत की दृष्टि से इसे लोकयुद्ध नही कहा जा सकता। युद्ध की घोषणा करते समय जनता से सम्मति नही ली गई। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् जनता की अपेक्षा ब्रिटिश साम्राज्यवादियो का पाश ही मजबूत होने वाला है। भारत को यदि तत्काल स्वातन्त्र्य दे दिया जाय अथवा वह पूर्ण लोकसत्तात्मक हो तो भारतवर्ष की जनता रूसी जनता के समान युद्ध मे भाग लेगी, शालीवाहन की तरह यह स्वातन्त्र्य भी अवसर पड़ने पर मिट्टी मे से सैनिको का निर्माण करेगा। यह कीमिया स्वातन्त्र्य का अमृत ही निर्माण करेगा। आज भी चर्चिल साहब कहते हैं कि जो वस्तु हमारी है हम उसे कदापि नही छोड़ेगे। ऐसी अवस्था मे युद्ध के अनन्तर भारत को स्वातन्त्र्य मिल ही जायगा इसे किस मुँह से उक्तियुक्त कहा जा सकता है। चर्चिल साहब तो यह भी नहीं चाहते कि नवीन इंग्लैंड का निर्माण हो। जिस इग्लैंड में पैंसठ प्रतिशत जमीन आठ प्रतिशत लोगों के हाथ में है, जहां वार्षिक आय का अस्सी प्रतिशत भाग

पन्द्रह प्रतिशत लोगो को मिलता है, ऐसे इग्लैंड को बनाये रखने के लिए चर्चिल साहब श्रम धर्म और अश्रु का व्यय करने के लिए तैयार हैं। प्रिमरोज इंग्लैंड की, डर्बी मे भाग लेने वाले इग्लैंड की अर्थात् एक दृष्टि से सामाजिक विषमता से युक्त इग्लैंड की रक्षा चर्चिल साहब को करनी है। स्वातन्त्र्य के मिलने पर तथा वास्तविक अर्थों मे जनता का स्वातन्त्र्य मिलने पर अर्थात् जनता को यदि यह पूर्ण विश्वास हो जाय कि युद्ध के अनन्तर आर्थिक प्रजातन्त्र की स्थापना अवश्य होगी तो इग्लैंड की जनता अधिक उत्साह से युद्ध मे भाग लेगी ऐसी युक्ति वहा के लोकनेताओ की है। यहा यदि इस प्रकार का स्वातन्त्र्य मिल जाय तो हमारे मामा (मुझ से पूर्व मामा वरेरकर का भाषण हुआ था) भी शेलार-मामा (मामा वरेरकर एक साहित्यिक हैं। शेलार मामा एक बड़ा वीर शिवाजी के समय मे था।) की तरह लडने के लिए तैयार हो जायेगे। पूजीवाद के लिए, साम्राज्यवाद के लिए, सोलह रुपयो के लिये जनता नही लडेगी। और जनता की जब तक यह मनोदशा है तब तक इस युद्ध को "लोकयुद्ध" नही कहा जा सकता।

ब्रिटिश राज्य नहीं चाहिए

भाषण के समय चर्चिल के विरुद्ध की गई वाक्-क्रीडा ब्रिटिश सैनिकों को विशेष रुचिकर प्रतीत हुई-सी दृष्टिगत होती थी। कांग्रेसी जनता प्रसन्न दृष्टिगत होती थी। साम्यवादी मित्र कुछ पशोपेश मे पडे हुए-से दिखाई देते थे। "पराक्रमी रूसी फौजो का हिटलरी जर्मनी का नाश करके बर्लिन पर लाल झडा फहरा देने से ही काम पूरा नही होगा। जब साम्यवादी आदर्शों की जीत होगी और जब चर्चिली इंग्लैंड का पराभव होगा तभी सच्ची सभ्यता का झडा खडा किया जा सकेगा और तभी युद्ध की समाप्ति होगी अथवा सच्ची विश्वशाति का प्रारम्भ होगा। मेरे भाषण समाप्त करते ही सभा के समस्त वातावरण मे एक प्रकार का विचित्र परिवर्तन उपस्थित हो

गया। प्लेटफार्म से नीचे उतरने पर दस-बारह ब्रिटिश सैनिक मेरे चारो तरफ जमा हो गये और उनमे से एक ने मेरा अभिनन्दन करते हुए कहा, "आपका व्याख्यान सुन्दर (ब्यूटिफुल) रहा।"

मैंने कहा—"यह तो कुछ नहीं कहा जा सकता, हा कुछ लट्ठमार (ब्लंट) अवश्य हुआ है।"

एक ने पूछा—"हम सैनिक लोग आपके देश के लिए क्या करें ?"

इस प्रश्न का उत्तर आसान नही था। पर देना आवश्यक था। मैंने कहा—"जब आप अपने देश में जायेंगे, तब अपने देशबन्धुओ से कहियेगा कि भारत को ब्रिटिश राज्य नहीं चाहिए। चुनाव के समय उसी उम्मीदवार को वोट दीजिए जो भारतीय स्वातन्त्र्य का पक्ष-पोषण करता हो, तथा जो भारत के स्वातन्त्र्य के लिए कटिबद्ध हो।"

एक-दम पाच-छह लोगो ने प्रश्न किया, "शैल वी हैव वोट्स एट आल ?" (क्या हमें मताधिकार होगा ?) पर मेरे पास इस प्रश्न के लिए कोई उत्तर नहीं था।

किसका श्रम और किसको आराम ?

जिन सैनिकों ने अपने जीवन को तृणवत् समझा, घरबार छोडकर जो विश्व की अनेक सीमा तक चले गये और जो मृत्यु से अखंड रूप में झगडते रहे उन सैनिको को अपने देश का भविष्य रेखाकित करने का कुछ भी अधिकार न रहे यह बात क्या है ? देश के सरक्षण के लिए राष्ट्रीय भावना को जागरित करने वाला पूंजीपति वर्ग तथा उसके पोष्य लोकनेता सकट के समाप्त होने पर पुनः पूर्वपद पर चले जायेंगे क्या ? किसका श्रम और किसको आराम ? कौन मरे और किसकी स्वार्थसिद्धि हो ? चर्चिल की युद्धकालीन घोषणाओं को स्वयं उसके देश-बाधव सत्य मानने के लिए तैयार नही हैं, यही अर्थ हुआ न ? दो राष्ट्रो की जनता मे किसी

प्रकार का वैरभाव न रहने पर भी सामान्य मनुष्य असामान्य उत्साह के साथ युद्ध मे भाग लेकर फिर एक बार धोखा खा जायेंगे, यही इसका अर्थ हुआ न ? जो लडा, जिसने श्रम किया उसे कुछ भी अधिकार नही ! इसका यही अर्थ हुआ कि दुनियाँ मे कृतज्ञता नाम की कोई वस्तु नही है। और मेरे दिमाग मे जब इस प्रकार के ख्याल आ रहे थे उस वक्त गत युद्ध के विजय के अनन्तर अध्यक्षीय निर्वाचन के लिए खडे हुए तथा पराजित हुऐ फ्रेंच राजनीतिज्ञ क्लेमनको के शब्द स्मरण हो आये। गत युद्ध मे विजय का कारण वही था, यह सब कोई मानता था। पर युद्ध के अनन्तर निर्वाचन मे असफल हो जाने पर इंग्लिश पन्त प्रधान लाइड जार्ज ने उस से कहा—"क्या यही देश की कृतज्ञता है ?" इस पर क्लेमनको ने उत्तर देते हुए कहा—"माई फ्रेंड देयर इज़ नो ग्रटिट्यूड इन पालटिक्स (प्रिय मित्र, राजनीति मे कृतज्ञता के लिए कोई स्थान नही है) और जुलाई मास में निर्वाचन करवा कर चर्चिल ने भी क्लेमनको के सिद्धांत ही की पुष्टि की थी। लाखो लोगो को वंचित किया गया था और राजनीति में चलता भी यही है। जो निष्ठावान् होते हैं वे बेचारे काम आ जाते हैं। जो धोखेबाज होते है, कार्यसाधू होते है वे काम बना जाते हैं। "हनुमान को तेल और विभीषण को लंका" यह राजनीति का सिद्धांत तो बहुत पुराने ज़माने से चला आ ही रहा है।

काश, हम मानवता का सम्मान करते !

"इस प्रकार आप भीतर घुस आये हैं, आपको शर्म नहीं आती ?"

"बहुत अधिक आती है, पर चूकि सार्वजनिक काम का महत्व भी उतना ही अधिक है इसीलिए मुझे इस प्रकार भीतर घुसना पड़ा।"

यह बातचीत ५ मई १९४६ की आधी रात को करहाड स्टेशन पर खड़ी हुई मेल ट्रेन के सैकन्ड क्लास के एक डिब्बे में हुई। उस दिन कर्हाड़ में बहुत बडा जन-समुदाय एकत्र हुआ था। कृष्णा और कोयना के संगम पर जनता और कृषि कार्यकर्ताओ का संगम हुआ था। दो-अढ़ाई वर्षों के अज्ञातवास में से तप और दमक कर निकले हुए, जनता के तथा ९३ धारायी सरकार के अनेक कार्यकर्ता वहा प्रकट होने वाले थे। उनका सत्कार वहां होने जा रहा था। नदी के किनारे कर्हाड के नागरिको ने समारम्भ की व्यवस्था कुछ ऐसी कर रखी थी कि उसे देखकर लगता था मानो

वहां कोई छोटा-मोटा काग्रेस का अधिवेशन हो रहा हो। भारी जन-समुदाय की उपस्थिति के कारण कुछ अव्यवस्था भी थी। पाडु मास्टर जब बोलने के लिए खडे हुए तो एकाएक दूरध्वनिक्षेपक की आवाज़ ही खत्म हो गई। कदाचित् उसे ऐसा प्रतीत हुआ हो कि पाडु मास्टर की आवाज़ सुनकर भीड-भडक्का और ज्यादा बढ जायेगा। या पाडु मास्टर की उपस्थिति का ज्ञान पुलिसवालो को हो जायेगा, कदाचित् इस भय के कारण उस यंत्र ने मुंह बन्द कर लिया हो। जो कुछ भी हो, रात के दस बजे तक सभा का कार्य चलता रहा।

सभा की समाप्ति के पश्चात् मुझे पूने की ओर लौटने की जल्दी थी, इसलिए मैं कर्‌हाड स्टेशन पर आ गया था। उस ऐतिहासिक सभा के अध्यक्ष-पद पर अभिमानपूर्वक विराजमान हुआ मैं एक यात्री के अपमानास्पद प्रश्न का इतनी शान्ति से उत्तर दे रहा था, यह मुझे आज भी सत्य नही प्रतीत होता। मेरे अतिरिक्त अन्य सैकडों लोग सभा का काम समाप्त करके अपने-अपने गाव की ओर जाने के लिए स्टेशन पर आये हुए थे। स्टेशन के अधिकारी ने मुझे इस भरोसे पर टिकट बनाकर दिया था कि कदाचित् सेकन्ड क्लास के डिब्बे मे जगह मिल जायेगी। इतना ही नहीं अंगद-नीति का अवलम्बन करने का, अर्थात् खिडकी के रास्ते डिब्बे मे घुसने का जो पराक्रम मैंने उस समय प्रदर्शित किया था, उसका सारा श्रेय उन्ही अधिकारी महोदय को था। दो-तीन मिनिट तक मैं उनके साथ इधर-उधर डिब्बो मे जगह तलाशता रहा। मेरे साथ कितने ही अन्य कार्यकर्ता भी थे। जब कहीं जगह न मिली तब मैंने एक डिब्बे मे नीचे थोड़ी-सी जगह खाली देखकर उसमे घुसने का प्रयत्न किया। मगर डिब्बे में बैठे हुए यात्रियो ने अन्दर से बुरी तरह दरवाजा बन्द कर रखा था। जब मैंने देखा कि उन लोगो ने दरवाजा न खोलने की कसम खा रखी है तब मुझे

खिड़की के रास्ते डिब्बे के भीतर घुसने के लिए लाचार होना पड़ा। वह डिब्बा प्लेटफार्म से कुछ हट कर था। मैं बिलकुल सच कहता हूँ कि मुझे कार्यकर्ताओं के कन्धों पर सवार होकर खिड़की के रास्ते डिब्बे के भीतर प्रवेश करना पड़ा। मेरे पैर ज्योंही फर्श पर पडे त्योंही एकदम शत्रुपक्ष ने मुझे चारो ओर से घेर लिया नीचे तीन और ऊपर तीन, इस प्रकार सोये हुए छहो के छहों यात्री उठकर तथा हड़बड़ाकर ऐसे खड़े हो गये मानो उनके जीवन और वित्त पर कोई भारी संकट आ खड़ा हुआ हो। उन लोगो ने मोर्चा ठानने के लिए पूरी तरह से कमर कस ली थी। रोमेल ने अगर चाहा भी होता तो वह इतना सफल व्यूह न रच पाता। सुदैव की बात इतनी ही थी कि वे सारे शस्त्रविहीन थे। फिर भी वे मेरे विरुद्ध संगठित हो गए थे। तीसरे दर्जे की भीड़ का मुझे पूरा अनुभव था। उस दर्जे के यात्रियो की मनोवृत्ति का मुझे पूर्ण ज्ञान है। अन्दर जाते समय वे कितना भी विरोध क्यो न करे, पर अन्दर चले जाने के बाद उनका यह भाव लुप्त हो जाता है और वर्तन मे भरा हुआ अनाज जिस प्रकार हिलाने से नीचे बैठ जाता है उसी प्रकार गाड़ी के चलने पर सब लोग एक-दूसरे के लिए यथाशक्ति सुविधा कर देते है। कारण उस दर्जे में मानवता का लोप नहीं हुआ होता। वहाँ सही माने मे भीड़ होने पर भी जगह मिल जाती है। पर यहा भरपूर जगह रहने पर भी भीड़-भड़क्के की शिकायत बनी हुई थी।

"यह सारी जगह रिज़र्व है," उनमे से एक ने ज़रा अकड़ कर कहा।

"हा, मुझे इसका ज्ञान है," मैंने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

"आपका सामान हम उठाकर फेक देंगे।"

"कीमती चीज तो मेरे पास कुछ है ही नही, अकेला मैं और मेरा सौजन्य, यही मेरा सामान है। इसमें से एक को आप नही फेक पायेंगे और

दूसरे को मैं नही फेक सकूँगा।"

यह सारा सवाल-जवाब अंग्रेजी मे हो रहा था और इच्छा न रहते हुए भी मुझे अंग्रेजी बोलनी पड़ रही थी। वे लोग तैश में आकर बोल रहे थे, मैं सर्वदा शान्ति भाव से उत्तर देता जा रहा था। अभिमन्यु की नीति का अवलम्बन करने का वह मौका नही था। पुनश्च, अभिमन्यु की और मेरी उम्र मे भी तो कोई साम्य नहीं था। अतः मैं युधिष्ठिर की-सी शात-वृत्ति धारण करने के प्रयत्न में था। इस हिंसा और अहिंसा की मुठभेड़ मे जो पहले आहत हुआ वह एक स्त्री थी, जो उन यात्रियो के साथ यात्रा कर रही थी। वह माई तो चुप बर्थ पर जाकर पड रही और मुँह पर ओढनी ढंककर उसने बाह्य सृष्टि को अपनी दृष्टि से ओझल कर दिया उनमें से एक ने मुझे धमकी देते हुए कहा—"अभी स्टेशन मास्टर से कहकर मैं आपको बाहर निकलवा देता हूँ।"

"जिसने मुझे यहा लाकर पहुचाया है वह मुझे यहा से काहे को बाहर निकालेगा ?" मैंने आत्मविश्वास के साथ कहा।

इस पर उनमे से एक ने मेरी अक्ल पर कुछ छींटे कसे। पर मैंने अत्यन्त शान्त स्वर मे कहा—"मैं बहुत ज्यादा अक्लमन्दी का दावा नहीं करता। महत्वपूर्ण सार्वजनिक काम आ पडा है, इसलिए मेरे लिए जाना अनिवार्य है। जो कुछ मैं कर रहा हू वह गलत है यह मैं जानता हूं, पर वैसा करने के लिए कारण भी इतने ही प्रबल है, इसीलिए मुझे ऐसा करना पड़ रहा है।"

इसके बाद एक दूसरा विरोधी योद्धा भी धराशायी हो गया। ऊपर बर्थ से जो महानुभाव छलाग मारकर नीचे आ धमके थे वह उतनी ही चपलता के साथ ऊपर चले गए। बचे हुए लोगो मे एक मिया भाई भी थे जिनकी परिचायिका आकृति स्पष्ट रूप से उनके अहं विशेष भाव पर

प्रकाश डाल रही थी। उन्होंने अपनी "खास" अंग्रेज़ी में बोलना शुरू किया और कहा, "मैं जंजीर खींच लूँगा।

मैंने कहा—"आपके जंजीर खीच देने से इतना ही होगा कि गाड़ी खडी हो जायेगी, पर यह भी आप देख लेगे कि जब तक मुझे गाड़ी मे ले नही लेंगे तब तक मुझे विदा देने आए हुए लोग इस गाडी को एक इंच भी आगे नहीं बढ़ने देंगे।"

मिया भाई ने एक बार अपने सिर पर और फिर अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरा। ऐसा मालूम पडा कि वह कदाचित् 'डायरेक्ट ऐक्शन' की स्फूर्ति की प्रतीक्षा में है। इतने मे स्टेशन के अधिकारी ने जोर से उनसे पूछा—"आप जानते है यह कौन हैं?" पर बीच ही में उनकी बात काट-कर मैंने कहा—"नाम बताने की आवश्यकता नही। मै इनका एक मित्र हूँ और इनके साथ आनन्द से यात्रा करने वाला सहयात्री हूँ।"

गाड़ी चल पडी। प्लेटफ़ार्म पर चिरपरिचित जयघोष हो रहे थे। दो बैंचो के बीच, मैं और वह मुसलमान सज्जन एक-दूसरे के आमने-सामने खडे थे। शेष सारे योद्धा अपने-अपने शिविर मे अर्थात् बर्थ पर जाकर लेट चुके थे। गाड़ी प्लेटफार्म से बहुत आगे बढ गई और ओगलेवाडी के दियो को हमने पीछे छोड दिया; परन्तु मेरे मित्र ने जंजीर नहीं खींची। अन्य किसी प्रकार की कोई चेष्टा भी उन्होंने नही की और एक-दो मिनिट मे वह ऊपर अपनी बर्थ पर जाकर सो रहे। इसके पश्चात् मैं बहुत देर तक इस घटना के बारे में विचार करता हुआ, दो बेंचो के बीच अपनी कमली बिछाये बैठा रहा। अगस्त १६४४ में जेल से छूटकर आने के पश्चात् कुर्डूवाडी जंकशन पर हुई एक घटना मेरी आखो के सामने दौड़ गई। कुर्डूवाडी स्टेशन पर मद्रास मेल खडी हुई। उस समय हम लोग डिब्बे में नियत सख्या से कोई दो गुना अधिक सख्या मे थे। गाडी के

रुकते ही दस-बारह वडर स्त्रिया (पत्थर का काम करने वाली स्त्रिया) अपने साथ छोटे-छोटे बच्चे और विविध आकारो तथा रंगो वाली गठरिया लिए अन्दर प्रविष्ट हुई और उन्होने हमारे डिब्बे को 'ब्लैक होल' का रूप प्रदान किया। मैंने खिडकी मे से बाहर खडे हुए एक सिपाही को बुलाया और उससे टिकट-कलेक्टर को भेज देने के लिए कहा। उसने कहा—"काका साहेब, यह आपकी प्रजा है, गत दो दिनो से जगह न मिलने के कारण ये वही रुके हुए थे, फिर भी आप चाहते हो तो मैं टिकट-कलेक्टर को बुला लाऊँगा।" वह मुझे पहचानता था, यह तो जाहिर ही हो गया, पर साथ ही साथ उसने मेरे कर्तव्य के बारे मे इतने मार्मिक शब्दो में संकेत किया कि मेरी आख खुल गई। मैंने उससे टिकट कलेक्टर को न बुलाने के लिए कहकर तत्काल डिब्बे को सभा-भवन का रूप दिया तथा तत्रस्थ मित्र-मण्डली से निवेदन किया कि वे बारी-बारी से खड़े हों और स्त्रियो के लिए जगह कर दें। उसे सब ने मान लिया तथा इस प्रकार हम सभी यात्रियो ने भ्रातृभावपूर्वक प्रवास किया। यदि हमने केवल अधिकार की ही बुद्धि से काम लिया होता तो उन स्त्रियो को बाहर निकाल देना मुश्किल नही था। उससे हमारा प्रवास क्षण भर एव कणभर अधिक सुविधापूर्ण हो गया होता। परन्तु उससे हम एक उच्च कोटि के आनन्द से वंचित ही रह गए होते। उस घटना की आज की इस घटना से तुलना करते हुए तथा तदुद्भूत अनेक विचार तरंगो से हिल्लोलित होते हुए अंततः मैं उस सेकंड क्लास के डिब्बे की दो बेंचो के बीच बिछी हुई अपनी कमली पर सो रहा।

प्रातःकाल आंख खुलने पर उन यात्रियो मे से एक ने अपने आप मुझसे बर्थ पर बैठने की प्रार्थना की तथा अत्यन्त नम्र स्वर से मेरा नाम पूछा। अब पूरी तरह से पौ फट चुकी थी। डिब्बे मे चारों तरफ नजर

दौड़ाने से मालूम पड़ा कि उनमे एक मारवाडी जोडा यात्रा कर रहा था। उनके अतिरिक्त एक मद्रासी और एक पारसी सज्जन थे। एक हमारे मुसलमान भाई थे तथा छठे महानुभाव प्रातविधि के लिये गए हुए हैं ऐसा मालूम हुआ। पारसी ने ही मुझे जगह देकर मेरा नाम पूछा था।

मैंने कहा—"नाम से आप क्या कीजियेगा ? आपके समान ही मै भी एक यात्री हूँ। समुद्र मे बहती हुई दो लकडियाँ जिस प्रकार एक जगह चली आती है और दूर हो जाती हैं उसी प्रकार हम भी आध पौन घंटे मे एक दूसरे से अलग होने वाले है।"

पारसी ने कहा—"जिस शान्ति एव सभ्यवृत्ति से आप कल व्यवहार कर रहे थे उससे प्रतीत होता है कि आप कोई बड़े आदमी है।"

मैंने कहा—"शांति एवं सभ्यता सदैव बड़प्पन के परिचायक होते हैं ऐसी बात नही है। ये बाते इतनी सस्ती हैं कि बगैर किसी कीमत के हर कोई व्यक्ति इनको काम में ला सकता है।"

हम लोगो की ये बाते चल ही रही थी कि छठे सज्जन भी प्रातविधि से निवृत्त होकर बाहर आ गये, उन्होने तत्काल "काका साहेब, आप इधर किधर ?" कहकर मुझे नमस्कार किया।

मैंने कहा—"मै तो कर्‌हाड से इसी डिब्बे मे हूँ।"

वह सज्जन, जो कर्नाटक के एक बडे नेता के सुपुत्र थे, बोले—"अच्छा, तब आपने मुझे कल क्यो नही बतलाया ? आपको जगह देकर स्वयं नीचे आ गया होता मै।"

उसने वैसा किया होता इसमे मुझे किसी प्रकार का सदेह नही था। बत्ती के धुंधले प्रकाश मे उसने मुझे पहचाना नही यह भी सत्य ही होगा। मैंने कहा—"तू तरुण है, विश्राति की तुझे अधिक आवश्यकता है। मैं नीचे सोया इसमे मुझे वह नीद नही आई, यह बात थोड़े ही है ?"

इसके बाद मैंने सब यात्रियो को बतला दिया कि मैं कौन हूँ। तत्काल सब लोगो ने खेद व्यक्त करना आरम्भ कर दिया। "आपने अपना नाम बतला दिया होता तो आपकी सगति का लाभ हमे प्राप्त हुआ होता। आपने नाम न बतला कर अच्छा नही किया।"

पारसी सज्जन ने, जो बेलगाव के एक बहुत बडे व्यापारी थे तथा बम्बई के एक बडे नेता के सम्बन्धी थे, मेरे नाम न बताने के विषय में अनेक मर्तबा खेद प्रदर्शित किया। उन्होने बताया कि बम्बई वाले सज्जन ने उन्हें बतलाया था कि मेरे बारे मे लोगो की राय बहुत अच्छी है। अत मैं जिस उत्तर को देने अथवा न देने के बारे मे बहुत देर से सोच रहा था उसका उचित समय आया जानकर मैंने उनसे कहा—"मैंने नाम बता दिया होता तो आप लोगों ने मुझे जगह दे दी होती, मेरा सम्मान किया होता। पर सम्मान हुआ होता मेरी पदवी का तथा मेरे प्रतिष्ठित जीवन का, परन्तु मनुष्यता का सम्मान न हुआ होता। आपमें और मुझमे जो वस्तु समान है वह है मानवता। वह मानवता अपमानित हुई। मुझे इसी बात का खेद है।"

पूना स्टेशन आया। हम सभी नीचे उतरे। मेरे पास सामान क्या था; एक चमडे की पेटी भर! उसके उठाने के लिए हिन्दू, मुसलमान और पारसी सभी मे होड-सी ठन गई। पर मैं किसी को भी इस बात का सम्मान देने के लिए तैयार न था। सबके 'नमस्कार' मे तथा 'आलेकुम सलाम' में सत्य और सभ्यता की विजय किस प्रकार सुखदायी एव चिरस्थायी होती है, इसका विचार करते हुए मैं स्टेशन से बाहर चला गया।

कबाड़ी बाजार में 'लोकतन्त्र'

पूना शहर अनेक बातों की तरह अपने 'कबाड़ी बाजार' के लिए भी प्रसिद्ध है। ऐतिहासिक अनुसंधान कार्य से लेकर १६४४ तक के अनेक प्रकार के आंदोलनों के लिए पूना की जैसी और जितनी प्रसिद्धि है, लगभग उतनी ही कबाडी बाजार के लिए भी है। सन् १६२४ से १६२५ तक यह कबाडी बाजार हफ्ते में दो मर्तबा शनिवार वाडे के सामने तथा बगल में लगा करता था। आजकल कुछ बरसो से वह मुठा नदी के परली पार लगा करता है। पर इस स्थान-परिवर्तन से उसके महत्त्व में कुछ भी कमी नही हुई है। पहले की तरह आज भी उसका विविधता से भरा हुआ विचित्र स्वरूप कायम है। मराठी में इसे 'जुना बाजार' कहते हैं। जुना बाजार का अर्थ है पुराना बाजार जिसका साधारणतया लोग यही मतलब लेगे कि वहाँ सब पुरानी-धुरानी चीजें ही बिक्री के लिए रखी जाती होगी। पर पहले वहाँ कितनी ही नई वस्तुएँ भी बिक्री के लिए आया करती थीं। पहले की भांति ही वहाँ बूढे लोग नई-पुरानी वस्तुओं की खोज में आया करते थे, यह सोचकर कि यहाँ सस्ते में मिल जायेंगी।

एक पैसे के लिए एक घण्टे तक घिसघिस करने की अपनी पुरानी आदत अभी उन लोगो ने छोडी नही, ऐसा नजर आता है। आज भी साधारण-तया उपयोग मे लाई गई चीज को थोड़ा-बहुत नया रग देकर इस बाजार में नई वस्तु के नाम से बेचा जाता है। आज के साहित्यिक लोग भी कम अधिक पैमाने पर यही किया करते हैं, पर उन्हे कोई कुछ नही कहता। इसके विपरीत, जो वस्तु नवीन बनाकर छापी जाती है उसे नवीन समझ कर ही उसकी प्रतिष्ठा और प्रशंसा की जाती है। राजनीतिक क्षेत्र में भी यही होता है। पुरानी-पुरानी गलतियों को ही बार-बार दुहराने का प्रयत्न स्पष्टरूप मे दिखाई देता है। तो भी उन गलतियो को नवीन तत्वज्ञान की नवीन प्रमेयो की विचार-सरणी कहकर पुकारा जाता है।

पूना के कबाडी बाजार मे अपनी अभीष्ट वस्तुओ को सस्ते भावों में प्राप्त करने में प्रबल सम्भावना रहती है। बचपन से तमाशे के लिए कभी-कभी एकाध चीज खरीदने के लिए, तथा अनेक बार केवल मनोरंजन के विचार से मैं इस कबाडी बाजार की ओर आकर्षित होता रहा हूँ। पूना के प्रत्येक व्यक्ति की आकाक्षा सामान्यतया यही रहती है कि उसकी गृहोपयोगी प्रत्येक वस्तु नई रहे। यह होने पर भी उसकी अनेक आवश्यक-ताओ की पूर्ति इस कबाडी बाजार से ही हुआ करती है। पूना का कबाड़ी बाजार खुला बाजार है, अतः उसकी तुलना बम्बई के चोर बाजार से नही की जा सकती। इसका यह अभिप्राय नही कि चोरी करके लाई गई वस्तुएं अपना 'कायाकल्प' करवाके यहाँ मिलती ही नही, आजकल सारी वस्तुएँ महगी एव अलभ्य हो गई है। 'देशोद्धार की योजनाओ' को छोड़कर बाकी कोई भी चीज अपने योग्य प्रमाण मे नहीं मिलती। खास करके पुस्तको के बारे मे गत चार पाँच वर्षों से युद्ध के कारण विशेष अड़चन अनुभव होने लगी है। पुस्तकें खरीदने की बीमारी मेरी पुरानी है। थोडे

से पैसे ज़्यादा महसूस होते ही पुस्तकें खरीदने का मेरा यह व्यसन अनेक मर्तबा 'गृह-मन्त्री' के आक्षेप का विषय बन चुका है।

एक दिन आज हमारे एक पुराने पक्षकार (मवक्किल) ने कई बरस पहले काम के प्रतिदानस्वरूप अप्रत्याशित रूप मे कुछ रकम लाकर हमें दी। अनुमानपत्रक (बजट) के सम्बन्ध मे मैंने स्वयं एक पुस्तक लिख रखी है पर अपने घर के अनुमानपत्रक के 'आय' और 'व्यय' दोनो का ठीक-ठीक व्यौरा करना आज तक मुझे नही आया। प्रत्याशित वस्तु तो न आवे पर अप्रत्याशित आ जाय इस बात का जैसा मेरा अनुभव है वैसा ही यह अनुभव है कि प्रत्याशित वस्तु तो सारी की सारी खच हो जाती है और अप्रत्याशित वस्तु बढती ही चली जाती है। लक्ष्मी स्वभावतः चंचल है; अतः उसके स्वभाव के विरुद्ध उसे स्थिर अथवा स्थायी करने का प्रयत्न मैंने कभी नही किया। यह हो सकता है कि मेरे लिए वैसा करना संभव भी न हो। अतः जब उपयुक्त अप्रत्याशित रकम, जो कुछ छोटी-मोटी नहीं थी, हाथ में आई तब पहले पहल मैं 'इंटरनेशनल पुस्तक संग्रहालय' मे गया। जब वहॉ अपनी अभीष्ट पुस्तकें न मिली तो यह सोचकर कि अब किसी न किसी दिशा में जाना चाहिए मैं एटीफीट रोड से नये पुल की ओर चल पड़ा। अब मैं 'कांग्रेस भवन' के सामने से गुजर रहा था तब रास्ते पर लोगो की भीड़ को देखकर खयाल आया कि आज तो कबाडी बाजार का दिन है और तत्काल जैसे किसी तांगे वाले का घोड़ा आदत की वजह से अनायास किसी रास्ते की ओर चल पडता है मेरे पैर भी कबाडी बाजार के प्रदेश की ओर मुड़ गये। इसमें संदेह नहीं कि मैं बहुत दिनो के बाद आज इस कबाड़ी बाजार की ओर जा रहा था; तथापि अपरिचित होते हुए भी सारे दूकानदार मेरा स्वागत कर रहे थे। इस स्वागत के कारण उत्पन्न होने वाला 'अहंकार' अपने वास्तविक

स्वरूप पर आने से पहले ही विलीन हो गया, क्योंकि जो लोग मुझे पास बुला रहे थे वे मुझे अपना नेता समझकर नही बल्कि एक ग्राहक के नाते बुला रहे थे, यह बात शीघ्र ही मेरे ध्यान मे आगई। बैठने की नयी काठ की चौकी से लेकर सोने के मसहरीदार पलंग तक अनेक वस्तुओ के विक्रेता हावभावपूर्वक चिल्ला रहे थे। चिथडो को सीकर तय्यार किये हुए साबुत कपडे बेचनेवाले लोग उसी प्रकार के कपडे पहनकर अपने उत्पादन के साथ मानो 'सुसंगति' प्रदर्शित कर रहे थे। गालो पर कहीं-कहीं बालो के गुच्छोवाला 'हसन अली' बोहरी टूटी-फूटी बाल्टी से लेकर बिल्लौरी आईने तक की सर्वविसंगत वस्तुओ का समन्वय करके 'सर्वोदय' वाद का प्रयोग (एक्सपेरिमेट) करके दिखा रहा था। इस बाजार की गंदगी और स्वच्छता स्वयं इस बात का पक्का सबूत पेश कर रहे थे कि उस जगह की व्यवस्था का भार म्युनिसिपैलिटी पर है। एक ओर मोटरो और दूसरी ओर जानवरो के बाजार की योजना करके पूना की नगरपालिका ने अपने रचना-कौशल्य से बडी खूबी के साथ यह जतलाया था कि मनुष्य यंत्रों की अपेक्षा सजीव किन्तु जानवरो से भिन्न है। इस कबाड़ी बाजार में मानवीय गृह-प्रपंच के लिए आवश्यक 'साहित्य' (मराठी मे सामग्री के अर्थ मे भी साहित्य शब्द का प्रयोग होता है) के साथ-साथ ज्ञान 'साहित्य' के साधन अर्थात् ग्रन्थ भी थे।

कबाड़ी बाजार की पुस्तकें

स्वभावतः ही मेरा चित्त इस ग्रन्थ-भंडार की ओर आकृष्ट हुआ। मैंने इस कबाड़ी बाजार से पुस्तके कभी खरीदी ही नही सो बात नही, पर ऐसे प्रसंग बहुत कम आये है। पर आज मुझे न मालूम क्या हुआ कि मेरे मन मे विचार आया कि आज वहाँ से कुछ न कुछ खरीदना जरूर चाहिए और मैं पुस्तको की ढेरी मे से एक-एक पुस्तक उठाकर देखने

लगा। बाबिलोन शहर मे जिस प्रकार अनेक भाषा बोलने वाले लोग रहा करते थे और एक-दूसरे की भाषा न समझते हुए भी परस्पर व्यवहार किया करते थे, वैसी ही कुछ अवस्था यहाँ पर भी थी। सस्कृत, मराठी, उर्दू, बगाली, अग्रेजी, फ्रेंच इत्यादि नाना भाषाओ की पुस्तके पाडोबाजी की दूकान मे मिल-जुलकर एक ही ढेरी में पडी हुई थीं। शंकराचार्यजी के ब्रह्मसूत्र से लेकर पट्ठे बाबूरावजी की लावनी तक के विषयो वाले ग्रन्थ वहॉ दिखाई दे रहे थे। परमेश्वर जैसे दिक्कालातीत है, तदवत ही मेरे सामने की ढेरी भी दिक्कालातीत भासित होती थी। विभिन्न देशो एवं कालो के ग्रन्थकारो द्वारा लिखे ग्रन्थ यहॉ एक ही राशि मे समन्वित थे। उस राशि की पुस्तको को टटोलते-टटोलते मेरी दृष्टि एक ग्रथ पर गई और एकदम बिजली का झटका-सा लगा।

पुस्तक मांगकर लेजानेवाले वकील साहब !

सन् १९३८ मे 'म्युनिक' की सधि हुई। उन दिनो यूरोप के राजनीतिक क्षेत्र मे 'एडवर्ड बेनेस' नामक एक व्यक्ति बहुत प्रसिद्ध हुए। चेकोस्लोवाकिया देश का यह नीतिपंडित म्युनिक की घटना से बहुत बरस पहले से सारे यूरोप को नात्सीवाद से बचे रहने की निरन्तर चेतावनी दे रहा था। अन्त:करण से तथा विचारो से यदि किसी को सच्चा प्रजातन्त्रवादी कहा जा सकता है तो वह यही नीतिपंडित था। गत युद्ध के अनन्तर चेकोस्लोवाकिया राष्ट्र कितने अल्पकाल में उन्नत हुआ, इसका वर्णन पडित नेहरू ने कुतूहलपूर्वक किया है। पिछले युद्ध के पश्चात् सबको यही प्रतीत होता था कि यह देश दुर्दैव के चक्र से निकलकर अब सुस्थिति के मार्ग पर चल पड़ा है। एक ही पीढ़ी मे प्राग नगर के नागरिको को तीन राज्यो का नागरिक बनने का सम्मान प्राप्त हुआ था। यूरोप के राजनीतिक क्षेत्र के इस पादापद के समाप्त हो चुकने के बाद यह देश बार्साई के अनन्तर

स्वयंशासित एव स्वयकर्तृत्ववान हो गया है ऐसा ही सारे जग को लगता था। १९२० से १९३७-३८ तक चेकोस्लोवाकिया ने जो प्रगति की और विशेषतः लोकतन्त्र पद्धति को सही अर्थों मे सफल करके दिखाया उनके सम्बन्ध मे सर्वत्र कुतूहल व्यक्त किया जाता था। इस महान् कर्तृत्व का अधिकाश श्रेय श्री बेनेस को था। उनका नाम सारे जग को पहले ही से ज्ञात था। चैम्बरलेन ने म्युनिच सधि करके चेकोस्लोवाकिया पर जो अन्याय किया था, उसके सम्बन्ध मे बेनेस ने जो भाषण दिया था वह इस प्रकार था:—

"यूरोप की शांति के लिए आज हम अपना बलिदान कर रहे हैं। इस बलिदान से यदि हमें यह विश्वास होता कि यूरोप की शांति अजरअमर रहने वाली है, तो इससे भी अनेक गुना अधिक बलिदान करने मे हमे अत्यधिक आनन्द हुआ होता। हमारे इस बलिदान से तो शाति नही प्रत्युत युद्ध ही की परम्परा कायम रहेगी। तथापि लोगो को शातिपूर्वक धीरज के साथ अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए और लोकतान्त्रिक का स्वातन्त्र्य सरक्षण करना चाहिए। आज न सही, कल तो निश्चित ही लोकतन्त्र की जीत होगी।" इस भाषण के सुनने के बाद उसी समय मैंने उसकी लिखी पुस्तक 'लोकतन्त्र' (डमोक्रसी) खरीदने का निश्चय किया और बम्बई जाकर खरीदकर ले भी आया। इस पुस्तक के लाने के बाद दूसरे या तीसरे दिन पूना के एक वकील साहब किसी काम से मेरे पास आये और वह पुस्तक पढ़ने के लिए मांग कर ले गये। पुस्तक कोई ऐसी वस्तु नही कि उसे हमेशा अपने साथ ही रखा जाय। यदि उसको पढने से किसी अन्य व्यक्ति के ज्ञान मे वृद्धि होती हो तो किसी दूसरे को उसके दे देने से अपना क्या बिगड़ता है? ज्ञान-दान श्रेष्ठ वस्तु है न? सभी पुस्तकें तो ऐसी नहीं रहती कि उन्हे सोने की तरह सभाल कर रखा जाय।

बेकन के कथनानुसार, कुछ पुस्तकें एक ओर को रखने की होती हैं कुछ पढ़कर मनन करने की होती हैं तथा कुछ ऐसी होती हैं जिन्हे अपना सदा का साथी, मार्गदर्शक समझकर पास रखना चाहिए। किसी भी प्रकार की क्यो न हो, अर्थशास्त्र के शब्दो मे वे 'बहुपयोगी' होती हैं। उनका किसी एक के द्वारा, किंवा एक मर्तबा उपभोग कर लिया जाय तो भी उनकी उपयोगिता खत्म नही होती। ऐसी अवस्था मे अपने पास की ग्रंथ-सपत्ति को अनुपयुक्त दशा मे रखना अमा. . . है, यह बतलाने की आवश्यकता नही। पर पढ़ने के लिए पुस्तके औरो को दे दे तो वे फिर वापस नही आती। सस्कृत का यह सुभाषित 'पर हस्तगतं गतम्' ही सही साबित होता है। जो वकील साहब पुस्तक माग कर ले गये थे वह कोई राजनीति के अध्ययन करने वाले नही थे। राज्य-शास्त्र मे विशेष अभिरुचि भी उनकी नही थी। परन्तु समाज मे ऐसे अनेक व्यक्ति होते है जो किसी के घर मे कोई नई पुस्तक देखकर उसकी इच्छा करने लगते हैं। पुस्तको को वास्तविक सम्पत्ति समझने वाले लोग हम लोगो मे बहुत थोड़े है। अपने सामर्थ्य से बाहर खर्च करके घर की सजावट का सामान वे लोग एकत्र करेंगे पर थोडी किंतु चुनी हुई पुस्तको का सग्रह करके अपने घर को और मन को सजाने का प्रयत्न वे बहुत कम करेंगे। तथापि कुछ लोगो की आदत होती है कि दूसरे के पास कोई अच्छी सी किताब नजर आई कि वे तत्काल माग बैठेंगे। पुस्तक वे लोग ले जायेंगे, लेजाकर खो बैठेंगे, और किसी ने उनसे वह वापिस माग ली तो गुस्से के मारे उनकी त्यौरियां चढ जायेगी। यह इतिहास तो सब जानते ही है। मुझे यह अनुभव पहले अनेक बार हो चुका था तो भी उक्त महानुभाव के उत्साह को देख कर मैंने उन्हे वह पुस्तक दे दी।

मुझे आघात क्यों लगा ?

ठीक सात वर्ष पश्चात् वह पुस्तक पाडोबाजी की उल्लिखित पुस्तको की राशि मे मुझे दिखाई दी। इन सात वर्षों मे जगत मे क्या-क्या हो गया इसका चित्रपट उस पुस्तक के हाथ मे आते ही मेरी आँखो के सामने आ गया। यूरोप के छोटे-बड़े लोकतन्त्रीय तथा अन्य प्रकार के राष्ट्र नात्सी लोगो के पैरो के नीचे कुचले हुए नजर आये। इतना ही क्यो, जो लोग अपने को लोकतत्रीय कहते है उन देशो मे भी हमने देखा कि समाज का जीवन नात्सी राज्यपद्धति की अपेक्षा कही अधिक जकडा हुआ है। मेरी आखो के सामने वह दृश्य आया, जहाँ ईमानदारी से किये गये विरोध को लोगो ने राज्यद्रोह की चौखट मे बिठा रखा है। सहिष्णुता और सौजन्य के जिन सद्गुणो पर लोकतन्त्र अध्याश्रित है, उनके मृत्यगीतो को इन कानो ने सुना। लोकतन्त्र का अभिप्राय है शासित व्यक्तियो की सम्मति से चलने वाला शासन, पर यह सिद्धात नाममात्र को बचा दिखाई दिया। एक पक्ष का स्वेच्छाचारी शासन ही लोकतत्र है, ऐसा अर्थ नवीन भाष्य-कारो द्वारा उपवर्णित मैने सुना। जिन दलो ने, जिन नेताओ ने, जिन राष्ट्रो ने स्वेच्छाचारी शासन के विरुद्ध आवाज़ उठाई उन लोगो को स्वेच्छाचारी शासन के पृष्ठपोषक कहकर उनकी जुगुप्सा की गई, उन्हे जेल मे डाल दिया गया। इन सात बरसो मे यहा तक नौबत आई कि असत्य भी सत्य सिद्ध होने लगा। देशभक्ति गुनाह माना गया और स्वातन्त्र्य का अभिप्राय बड़े देश की गुलामी माना जाने लगा। जो स्वातन्त्र्य नये विचारो की जननी, अभ्युदय की कामधेनु एवं अस्मिता का गौरव था आज उसके अर्थ, शून्य साबित होने तक की नौबत आ गई। आज सर्वत्र नियमन और नियन्त्रण का बाज़ार गरम है, व्यक्ति की प्रतिष्ठा एवं प्रभाव प्रतिक्षण क्षीण होता जा रहा है। व्यक्ति के महत्व का क्षय

ही आज के जगत मे वृद्धि है। व्यक्ति के गौरव को स्थिर रखकर समाज की प्रतिष्ठा एवं पराक्रम को वृद्धिगत करने वाला सगठन ही लोकतंत्र है, इसे मजूर करने के लिए आज कोई तैयार नही। इन गत सात वर्षों मे कार्यक्षमता के नाम पर लोकतत्र को पुराना आदर्श मान लिया गया है।

और इन सब घटनाओ के प्रतिबिम्ब के तौर पर ही कदाचित् यह लोकतत्र की पुस्तक इस कबाडी बाजार में बिक्री के लिए आकर पडी हुई थी! और दुःख की बात यह थी कि स्वामित्व की भावना से उस पर जो मेरा नाम लिखा हुआ था, उसे किसी ने अनेक लकीर खींचकर काटने का प्रयत्न किया था। मेरे नाम के नीचे और भी दो-चार नाम थे, जिन्हे उसी तरह से काट रखा था, पर मैने उन्हे पढने की भी कोशिश नही की। उस कटे हुए नाम वाले पन्ने को देखकर विचारो का बवडर इतने प्रबल वेग से उठा कि वहॉ पर अधिक देर तक बैठ कर यह पता चलाने की इच्छा भी नही हुई कि वह पुस्तक वहॉ कैसे आई। जहॉ लोकतंत्र जैसी वस्तु ही जीर्ण और पुरातन साबित हो गई, वहाँ इस क्षुद्र सी वस्तु को इतना महत्व क्यो दिया जाय? मैं उठ खडा हुआ। मेरे इर्द-गिर्द सारी जीर्ण और पुरानी वस्तुए अस्त-व्यस्त अवस्था मे पड़ी हुई थीं इसमे संदेह नही, पर मेरे सामने नदी वेग से बही जा रही थी। नये पानी के प्रवाह की कलकल ध्वनि कानो मे आ रही थी। जीवन भी एक प्रवाह है। कौन कह सकता है कि इस नवीन प्रवाह में से नवीन चैतन्य की उत्पत्ति नही होगी? और इसी मंगल कल्पना मे तन्मय होता हुआ मै अपने घर वापस आ गया।

पड़ोस में चित्रशाला है न ?

केल्यानें देशाटन, पंडित मैत्री, सभेत संचार,
शास्त्र ग्रंथ विलोकन, मनुजा ! चातुर्य येतसे फार।

यह श्लोक मराठी की क्रमिक पुस्तकों मे आया करता है। महाराष्ट्र का कदाचित् ही कोई ऐसा शिक्षित व्यक्ति मिले, जिसने यह श्लोक न पढ़ा हो। इसका अर्थ है :–देशाटन, पंडितजनों से मित्रता, सभा आदि में जाने-आने, शास्त्रग्रन्थ आदि का विलोकन करने से मनुष्य मे चतुरता आ जाती है। अवलोकन तथा अध्ययन के लिए, जनता के दुःख एवं दारिद्रय के निरीक्षण के लिए, अज्ञान तथा अनाडीपन का पता चलाने के लिए इस हतभाग्य देश मे अपने प्रान्त से बाहर जाने की आवश्यकता नही। किबहुना, किसी भी गांव मे, किसी भी गली और चौराहे पर आप चले जाइये, अनुभव का यह ग्रन्थ सबके परिदर्शन के लिए सर्वथा खुला हुआ रखा है। इसका परिदर्शन करना मेरा एक व्यवसाय ही हो गया है। स्वयं कोई व्यक्ति अपनी दुःखगाथा आकर सुनाये उसकी अपेक्षा किसी प्रसंग में सहज रूप से उन दु.खो का विदित होना अधिक स्वारस्यपूर्ण होता है।

अतः मैं और जेधे, जब भी कभी हमे मौका मिलता है, किसी शहर में, किसी गांव में, बस-स्टैण्ड अथवा स्टेशन पर के मैले-कुचैले भिनभिन करने वाले छोटे-बड़े उपाहारगृह मे चले जाते हैं। एक किनारे बैठकर उस जगह जमा हुए लोगो की बातचीत सुनना तथा कभी अपना परिचय न देते हुए लोककल्याण से संबन्धित प्रश्नो पर चर्चा करना भी हमारा एक उपक्रम रहता है।

कुछ महीने पहले की बात है। भानु विलास थियेटर में किसी कलोपासक मंडली ने एक नाटक किसी एक संस्था की सहायता के निमित्त करने का निश्चय किया था। और ऐसे "सत्कार्य" के लिए किसी न किसी अध्यक्ष की आवश्यकता तो रहती ही है, सो यह "बहुमान" इस बार मेरे हिस्से मे आया था। उसका कारण यह नही था कि मैं कोई बडा साहित्यिक, गायक अथवा नाटककार हूं, प्रत्यक्ष यह था कि मैं थियेटर के मालिक का मित्र हूँ। कलोपासको ने इस चुनाव में भी व्यवहार ही साधा था। कारण थियेटर मुफ्त हासिल करने की उनकी आंतरिक आकांक्षा थी। यह मैं तभी जान गया था। नाटक के प्रारम्भ होने मे अभी देरी थी, मगर हम पहले ही आकर धमक गए थे। यह जानकर कि नाटक के आरम्भ होने मे अभी विलम्ब है, सदाशिवपेठ के हौद से होकर गुजरने वाले रास्ते पर स्थित एक उपाहारगृह मे मैं चला गया। होटल का मालिक अवश्य ही कोई उच्चवर्णीय हिन्दू होगा, क्योंकि प्रथम दर्शन ही मे वीर सावरकर का चित्र टगा हुआ नजर आया। चूंकि यह होटल पूना के पश्चिम भाग मे अवस्थित था, इसलिए इसका नाम सस्कृत प्रचुर होना ही था। इतना ही क्यों, सामान्य मनुष्य के लिए उसके अर्थ का ज्ञान होना भी कठिन था। संस्कृत से थोडा बहुत परिचय होने के कारण मैं समझ सका कि यह एक उपाहारगृह है। मैं उसके भीतर चला गया। मै तो गाधीटोपी वाला था ही, मेरे

साथ के अन्य दो सज्जन भी गांधीटोपी ही मे थे। कदाचित् गली के नजदीक वाले ने हमे पहचान लिया हो, किवा हमे कुछ असाधारण ग्राहक समझकर उनकी गतिविधि मे कुछ अस्वस्थता आ गई। हमने जानबूझकर कोने वाली जगह अपने लिए पसन्द की। उस स्थान मे पदार्थ तैयार करने की जगह हमे अच्छी तरह नजर आती थी।

चाय वगैरा देने वाला लडका जब हमारे समीप आया, तब हमने उससे अपने मे से प्रत्येक के लिए उसे चाय का एक-एक प्याला लाने के लिए कहा, जिसके बारे मे किये गए विज्ञापन मे लिखा है कि "जो उत्साह कारक तो है पर उन्मादकारक नही, जो ग्रीष्मऋतु मे ठंडक और शरद् ऋतु मे गर्मी लाती है, जिसके पीने से मलेरिया जैसे रोग दूर भागते हैं और स्वास्थ्य समीप दौडता चला आता है।" और मै उस लडके की ओर देखने लगा। उसके शरीर पर एक ऐसा कमीज था जिसने निश्चय किया हुआ था कि चाहे जान चली जाय पर धोबी के घर नही जायगा। मूलतः उस कमीज का क्या रंग रहा होगा, इसका पता लगाना भी एक शोध का ही काम था। जिस प्रकार राजनीतिज्ञ लोगो की आलोचनाओ की परवा नही करता, उसी प्रकार वह भी सब प्रकार के मलो की परवाह नही करता था। उसने जो निकर पहनी हुई थी, वह चलने-फिरने की सुविधा के लिए नही प्रत्युत मालिक के खर्चे की सुविधा के लिए बनाई गई थी। मिनट-मिनट मे कधे से हाथ मे और हाथ से कंधे पर जाने वाले उसके कपड़े का तो वर्णन करना ही कठिन है। जब अन्दर से एक पर एक कप रखकर वह हमारे लिए चाय बनाकर ला रहा था तब मेरी दृष्टि लगातार उसी ओर थी। साथ ही अन्दर के कमरे की सारी अवस्था का भी ज्ञान हो रहा था। वहाँ का अंधेरा, वहा से निकलने वाला धूआ, चारो तरफ बिखरे हुए छिलके, वहाँ काम करने वालो की वेषभूषा, शरीर पर बहने वाली

पसीने की धाराएं आदि देखने पर एक बार मन मे यह विचार आया कि वहाँ से उठ कर चले जाये। लडके ने चाय लाकर हमारी मेज पर रखी। मैंने उससे उसका नाम पूछा। नाम के पश्चात् उसकी उम्र के बार मे प्रश्न किया। उसका वेतन और उसका अता-पता पूछ लिया। जब मालिक ने देखा कि वह हमेशा से कुछ ज्यादा समय तक हमारे पास खडा है तब स्वभावतः मालिक का भी ध्यान हमारी ओर खिंचा। मालिक ने यह देखकर कि मैं किसी किस्म की पूछताछ कर रहा हूं, एक दूसरे नौकर को, जिसकी उम्र कोई पच्चीस वरस की होगी, हमारे पास भेजकर यह कोशिश की कि किसी तरह वह लडका वहाँ से हट जाय। उस लडके की उम्र दस बरस की थी तथा उसने जो जानकारी हमे दी थी उसके मुताविक उसे भोजन के अतिरिक्त महीने मे छः रुपये मिला करते थे। रहने का इन्तजाम मालिक ने अपने यहाँ ही कर रखा था। एक बडा हाल था, उसी मे दस-बारह लडके और अन्य नौकर सो जाया करते थे। भोजन की व्यवस्था के बारे मे उसने जो जानकारी दी उससे यह अनुमान निकाला जा सकता था कि होटल मे बचने वाले सारे पदार्थ उन्हे दे दिये जाते होंगे।

"अच्छा, यह बता, सवेरे से लेकर तेरा क्या कार्यक्रम रहता है?" मैंने उससे पूछा। "हम सवेरे छः वजे उठते है।" और इसके बाद उसने जो दिनचर्या बतलाई उसमे तथा जेल के 'क' वर्ग के कैदियो की दिनचर्य्या मे मुझे कहीं भी अन्तर नहीं नज़र आया। उलटे जेल मे साझ के छः बजे काम समाप्त हो जाता है और यहाँ रात के नौ बजे तक तो काम रहता ही है पर पुलिस वालो की मालिक पर कृपा रहे तो उसके पश्चात् भी दो-तीन घंटो के लिए काम चालू रह सकता है। ग्राहको की अनुपस्थिति ही उनका विश्रांतिकाल—यही बस उनके लिए विश्रांति का कायदा था,

ऐसा प्रतीत हुआ। इस उपाहारगृह में दस से अधिक आदमी काम करते थे, तथापि वहाँ काम करने वालो के काम के घटो के ऊपर तथा श्रमिकों की विश्राति के समय के ऊपर सरकार का कुछ भी नियन्त्रण नही नज़र आता था।

मेरे पूछताछ करने से मालिक नाराज़ हो रहा था, तो भी मैंने अपनी पूछताछ उसी प्रकार जारी रखी। जो नौकर उस लड़के को वहाँ से जाने के लिए कह रहा था उससे भी मैंने पूछना-ताछना शुरू कर दिया। "होटल की पूछताछ के लिए कोई आया करता है क्या?" मैंने उन दोनों नौकरो से पूछा। "कोई नही आता" ऐसा उत्तर मिला। "तुम नौकरो को कितना काम करना पडता है तथा क्या काम करना पडता है, इस बात का पता चलाने के लिए कोई आता है क्या?" इसका भी "नही" उत्तर मिला। "तुम लोगो की कभी कोई सभा आदि हुआ करती है? तुम्हारा कोई सघ बना हुआ है क्या?" मैंने पूछा। मेरे इन दोनो प्रश्नो का बोध उन्हे नही हुआ। बडे नौकर ने बतलाया, संघ या सभा क्या वस्तु है इसका उन्हे कुछ भी ज्ञान नही है। इसपर सहज ही मैंने उनकी पढाई-लिखाई के बारे मे सवाल किया। बड़े लडके ने बताया कि उसे मराठी लिखना-पढ़ना आता है। पर अधिक पूछने से मालूम पडा कि वह कुछ समय पूर्व ही आता था, ऐसा उसके कहने का अर्थ है। इस समय उसका ज्ञान हस्ताक्षर करने से अधिक उसकी सहायता करने के लिए तैयार नही था। उसकी साक्षरता हस्ताक्षर की परिबन्ध रेखा को पार करके आगे बढ़ने का साहस नही कर सकती थी। उसकी दुनिया उपाहार-गृह तथा आठ-दस दिन मे एक दफा देखने को मिलने वाला सिनेमा इतने ही में परिसीमित था। हम जिस स्थिति मे हैं उससे अधिक अपने को होना चाहिए यह अभ्युदय की कामना ही उसके भीतर नही थी। दूसरों

के भाग्य की तुलना करके अपने घोड़े को आगे दौड़ाने की तीव्र लालसा ही उसने सदा के लिए विलुप्त कर रखी थी। सवेरे उठकर संध्याकाल तक, किंबहुना रात के दस-ग्यारह बजे तक, चाय का प्याला और रकाबी धोते रहना अथवा कपड़ा हाथ में लेकर मेज साफ करते रहना यह उनका अव्याहत गति से चलने वाला कार्यक्रम किसी स्थितप्रज्ञ व्यक्ति के कार्यक्रम के समान चलता रहता था। वह जिस किस्म की जिन्दगी बसर कर रहा था वह उसे असह्य प्रतीत होती हो ऐसा भी नहीं लगता था। जीवन का व्यापक हेतु क्या है, इसका ज्ञान तो भला उस बेचारे को कहाँ से हो सकता था ? द्विपाद होने के कारण ही उसे मनुष्य की पदवी प्राप्त थी, ऐसा कहना पड़ेगा। वह इस अवस्था मे, अज्ञानान्धकार मे, पड़ा रहे इस बात से मुझे क्लेश तो हो ही रहा था, पर इससे भी अधिक क्लेश मुझे तब हुआ जब मैं उस छोटे लड़के की ओर मुड़ा।

"तुझे कुछ लिखना-पढना आता है क्या ?"

"नही।"

"तू पाठशाला मे जाना पसन्द करेगा ?"

वह लड़का अपने मालिक के मुँह की ओर देखने लगा।

"तू यहाँ कैसे आया ?"

"कुछ महीने पहले मेरे मा-बाप गुजर गये, मेरे चाचा ने मुझे घर से निकाल दिया, अतः अपने गांव के एक आदमी के साथ मैं यहाँ चला आया, सो उसने मुझे लाकर यहाँ होटल में रख दिया।"

"अच्छा, अगर मैं तेरी फीस का इतजाम करदूँ और किताबें ला दूँ तो तू पढ़ेगा ? या तुझे जन्मभर इसी प्रकार प्याला-रकाबी धोते रहना ही अच्छा लगेगा ?"

इसपर फिर लड़का अपने मालिक के चेहरे की ओर देखने लगा।

मैंने उस लड़के से कहा, "इसमे मालिक का क्या सम्बन्ध है ? तुझे अगर पाठशाला मे जाना ही हो तो मालिक तुझे दो-तीन घटे की छुट्टी तो दे ही सकेगा, और अगर उसने वैसा नही किया तो मै उसे वैसा करने के लिए मजबूर करूगा । तो बता, है तेरी तैयारी शाला मे जाने की ?"

"हा" उसने उत्तर दिया ।

"तू कभी पाठशाला मे गया है ?"

"नही ।"

"तो, यहाँ सबसे नजदीक की शाला कौनसी है ?" मैंने पूछा ।

"नुक्कड़ पर चित्रशाला है न ।"

यह उत्तर सुनते ही मैं तो अवाक् ही रह गया । अज्ञान की दशा पूना जैसी प्रगतिप्रिय एवं सुविद्य नगरी मे इस सीमा तक चली जाय यह अत्यन्त खेद एव आश्चर्य की वस्तु है । पूना मे विद्या की परीक्षा होती है, ऐसी प्रसिद्धि है । यहाँ के कार्यकर्त्ता कहते है कि इस नगर मे सार्वत्रिक निःशुल्क प्राथमिक शिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए । पूना का वर्णन एक साहित्यिक ने विद्यार्थी निर्माण करने की उद्योगनगरी के रूप मे किया है । ऐसी अवस्था मे पूना मे इतना अधिक अज्ञान दिखाई दे, पूना के सुशिक्षित भाग की यह अवस्था रहे, यह सचमुच पूना के सभी पक्षों के नेताओ के लिए लज्जास्पद है । इस देश मे अज्ञान का निवास इसलिए है क्योंकि यहा विदेशी शासन है यह कहना सर्वांश मे सत्य नही है । दारिद्रय और अज्ञान इस देश के दो महान् शत्रु है । उनमे से अज्ञान का निःपात करने के लिए जितना यत्न किया जाना चाहिए उतना यत्न उच्चवर्ग के लोगो ने यथार्थ मे नही किया है । विद्या को पूजी का रूप प्रदान करके उसे किन्हीं विवक्षित वर्गों की ही थाती बनाये रखने का प्रयत्न आज तक किया जाता रहा है । और उस वर्ग के भी सब लोगो

को विद्या नही मिल सकी। जिस देश मे केवल आठ प्रतिशत लोग भी शिक्षित न हो, उस देश का जीवन निरादर्श, निष्क्रय एव निरुत्साह बना रहे तो उसमे आश्चर्य की कौन बात है। विद्या ही से तो श्रेष्ठता प्राप्त हुआ करती है। वह विद्या-रूप चैतन्य यदि राष्ट्र को प्राप्त नहीं होता तो राष्ट्र प्रगतिविमुख ही रहेगा, इसमे संदेह नही।

पूना मे, वह भी सदाशिव पेठ मे, वह भी सदाशिव पेठ के हौद के नजदीक जिसके बारे मे दावा किया जाता है कि वहा सरस्वती का निवास है, एक उच्चवर्गीय लडका यह पूछने पर कि पास मे कौनसी शाला है, उत्तर देते हुए कहे कि "चित्रशाला* है न" इसमें विडम्बना तो हुई है पर इससे समाज की वस्तुस्थिति पर भी प्रकाश पडता है।

(*चित्रशाला पाठशाला नही एक ख्यात मुद्रणालय है।)

मेरी प्रथम और अन्तिम चोरी

रम्य वस्तुओ को देखकर और मधुर स्वरो को सुनकर मनुष्य का मन उत्सुकता से भर जाता है। अन्य जन्मो की न भी सही, भूतकाल की घटनाए तो अवश्य ही स्मृत हो जाती है। भूतकाल की इन स्मृतियो में से कुछ में खुशी भरी रहती है और कुछ मे दर्द। कभी केवल घटनाओ की याद ही नही आती बल्कि उनकी सारी तसवीर आंखो के सामने जीवित और जागरित रूप में आकर खड़ी हो जाती है तथा ऐसा महसूस होने लगता है कि हम साक्षात् उन घटनाओ को अनुभव कर रहे हैं। इस अनुभवावस्था मे, वस्तु सृष्टि मे भले ही न हो पर अपनी कल्पनासृष्टि में, हम उन्हीं-उन्हीं भूलों को तथा व्यवहारो को दुहराने लग जाते हैं।

विचारशास्त्र का कहना है कि साधर्म्य और वैधर्म्य द्वारा मानवीय मन को चालना मिला करती है। ब्रह्मचारी को देखते ही गृहस्थाश्रमी मनुष्य की सृष्टि आखो के आगे आकर खडी हो जाती है। सूली पर चढ़ने वाले देशभक्त का वृत्तान्त पढ़ते ही देशद्रोही मनुष्य के कृष्णाकृत्य नज़र के सामने आ जाते हैं। हसने वाले बच्चे को देखते ही फलो की

शोभा दीखने लग जाती है। इसी प्रकार सुहास्य वदन को देखते ही कवि-मन को कमल का भास होता है। जो पार्थिव दृश्य हम देखते है उनका प्रतिबिब विचार-सृष्टि पर पड़ता है और तत्सदृश घटनाएं स्मृत हो आती हैं। मन के किसी दूरस्थ कोण मे सगृहीत स्मृतिप्रसग ऐसे ही किन्ही निमित्तो के कारण जागरित होते है। छिपे हुए अथवा दबाकर रखे हुए आनन्द, लज्जा अथवा शोक के काष्ठप्राय हुए वर्त्तनक्रमो को मानवीय मन इन अवस्थाओ मे पल्लवित करता है, उन्हे प्रासादिक करता है तथा पर्याप्तकाल तक उनमे रमता रहता है। आनन्द की स्मृति तो आनन्द देती ही है; पर दुःख और लज्जा की स्मृतियाँ भी कालातर मे अल्पाधिक मात्रा मे मन को सुखी बनाया करती है। ऐसा क्यो होता है, अथवा क्यो हो, यह कहना कठिन है, पर ऐसा होता है, यह अवश्य सत्य है।

स्वयमेव सपद्

इस प्रकार की एक विलक्षण तथा थोडी विमनस्कता उत्पन्न करने वाली घटना का मैने हाल ही मे अनुभव प्राप्त किया है। बम्बई सरकार ने जेलो मे सुधार करने के उपाय सुझाने के लिए एक समिति नियुक्त की थी, उसका एक 'सम्माननीय सदस्य' मै भी था। इस किस्म की समिति मे काम करने की पूरी पात्रता मुझमे है, ऐसा यदि मैं कहूँ तो मेरी यह आत्मश्लाघा अवश्य ही क्षम्य साबित होगी। तीन प्रान्तो की कुल जमा दस-ग्यारह जेलो मे मैने छः बरस गुजारे है, अतः मुझे ऐसे जीवन का 'विशेष अनुभव' है इस बारे मे किसी को सदेह नही करना चाहिए। जेलो मे रहते हुए अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिए किन उपायो का अवलंबन करना चाहिए इसका सारा तंत्र और मत्र मै अच्छी तरह जानता हूँ, ऐसी मेरे साथ रहने वाले, 'आश्रमवासियो' की राय है। मेरी इतनी ख्याति (!) होने के कारण गुणलुब्धाः स्वयमेव सपदः के न्याय से यह सदस्यता

अपने आपही मेरे पास चली आई। इसी सिलसिले मे गत दिसम्बर मे मै समिति का सदस्य होने के नाते अन्य सदस्यों के साथ धारवाड स्थित बाल-अपराधियो की पाठशाला (बोर्स्टल स्कूल) देखने के लिए गया था।

कर्नाटकी भाषा मोटर

उस दिन प्रायः प्रतिक्षण उत्साह बढ़ाने वाली सर्दी मे हम लोग बेलगाव से मोटर मे बैठकर आये थे। सुना था कि कर्नाटक की मोटरे भी चलते समय बहुत ज्यादा आवाज़ करती है। थोडा अनुभव भी हुआ था। मोटर में बम्बई राज्य का पूरा प्रतिबिम्ब था। गुजराती, सिंधी, महाराष्ट्रीय और कर्नाटकी सभी उसमे बैठे हुए थे। बिना किसी विभक्ती-करण की चर्चा के हमने यह प्रवास किया, यह जानकर शायद कुछ लोगों को आश्चर्य होगा। बाहर तो थोडी ठंड थी ही, उसके अतिरिक्त पास ही मे 'सकाल' (पूना का प्रातःकालीन मराठी दैनिक) के बाबा बैठे हुए थे अतः ठड अधिक बढ जाने का डर पैदा हो गया था। पर वह डर बेकार साबित हुआ। रास्ते की वनशोभा देखते हुए, इस राज्य के कारागृहों को राजप्रासादों का वैभव प्राप्त कराने के उपायों पर विचार करते हुए, हम सहीसलामत अपने मुकाम पर पहुँच गये थे। हमारा सारथी 'अविन्ध' (अच्छिद्रकरण यानी मुसलमान) था और नाम भी उसका डरावना था। पुनश्च, बडे तड़के वह किसी को कब्रिस्तान में पहुचाकर आया था। गाडी अगर उसने किसी खंड में गिरादी होती तो एक ही समयावच्छेद से बहुतसे महान् नेताओ को सद्गति (!) प्रदान करने का महापुण्य उसके हाथों सिद्ध हो गया होता और दुनिया से कुछ काफिरों का खातमा हो गया होता। पर ऐसा पाक खयाल उसके दिमाग में नही आया। इसका कारण कदाचित् मेरा वह रोआब हो, जिसमें कि मैं शाही दिल्ली की हिन्दुस्तानी अर्थात् उर्दू मे बोल रहा था। कम से कम मुझे तो यही प्रतीत होता है।

पुस्तक की चोरी

मुख्य दरवाजे के समीप गाड़ी के आते ही बैंड शुरू हो गया। पहरावे से वहाँ खड़े हुए लड़के कैदी नही प्रतीत होते थे। किंबहुना, परकोटे को छोड़ वहा अन्य कोई भी ऐसी वस्तु नही थी, जिससे यह कहा जाय कि वह जेल है। बंदूक वाले और डडे वाले सिपाही वहाँ नही थे। मुख्य द्वार पर लिखा हुआ 'पाठशाला' शब्द यथार्थ प्रतीत होता था। परकोटे के भाग से भीतर पहुँच जाने पर सारा दृश्य आल्हाददायक ही था। व्यवस्थित पद्धति से बगीचा लगाया हुआ था अतः समता और रेखा-बद्धता का नेत्राकर्षक सामंजस्य दिखाई देता था। सामान्य जेलो मे दिखाई देने वाला वस्तु का स्वरूप यहा बिलकुल नही दिखता था। इधर-उधर आने-जाने वाले व्यक्ति मुक्तापूर्वक आते-जाते नजर आते थे।

अधिकारी हमे भिन्न-भिन्न इमारतो मे चलने वाले वर्गों मे ले गये। उर्दू, मराठी, कन्नड, गुजराती आदि के प्राथमिक शिक्षण के वर्ग हमने देखे। एक अंग्रेज़ी का वर्ग देखा। हमारे मे से कुछ ने परीक्षक का भी काम किया। वर्गस्थ शिक्षकों ने अपने अनुभव बताये। वरिष्ठ अधि-कारियो ने अपराधियों के वर्गीकरण के बारे मे जानकारी दी। मालूम पड़ा कि बहुत से लड़के तरखानी, नक्काशी, बुनाई, सिलाई आदि का बड़ा अच्छा काम करते है। मेरे मन मे कुछ और ही विचार चल रहे थे। साधारणतया कोई होशियार लड़का दीखता तो मैं उससे पूछताछ करता। उसके घर की अवस्था, उसके माता-पिता का व्यवहार, उसके सगी-साथी आदि के बारे मे विशेष पूछताछ करता। चोरी किस स्थिति मे की, यह पता चलाने की मेरी तीव्र उत्सुकता रहती थी। मैंने जिस-जिससे पूछा, उसने अपनी चोरी स्वीकार की और किसीने भी यह शिकायत नहीं की कि उसे बेकसूर पकड़ा गया है। दूसरी जेलो के कैदियो के बारे मे इससे

कुछ उलटा ही अनुभव आया था। वे लोग प्रायः पुलिस के विरुद्ध शिकायत किया करते थे। कोई जज की शिकायत करता। एक भी ऐसा नही दिखाई दिया जिसने अपना अपराध मजूर किया हो और कहा हो कि मुझे जो सजा दी गई है वह ठीक ही है। इस जगह लोगो को असत्य बोलने की आदत पड गई हो ऐसा नजर नहीं आता था। कुछ लोग संगति के कारण तथा कुछ लोग घर के अव्यवस्थित वातावरण के कारण बिगड़े हुए अथवा बाम मार्ग पर लगे हुए थे। इस प्रकार पूछताछ करते-करते मै एक ऐसे लडके के पास पहुँचा जो देखने मे सुन्दर, साफ-सुथरा और बुद्धिमान नज़र आता था। मैने उसकी भी जानकारी ली। उसने कहा, "मैंने मार-पीट नहीं की, कुछ नहीं किया, जिस घर मे हम रहा करते थे उसके मालिक की मेज पर से एक पुस्तक उठाकर मै ले गया था। वह हमेशा घटो तक उस किताब को देखा करता था। इधर-उधर चक्कर लगाता, फिर उस किताब को देखता। घटो तक बाहर रहता और फिर अन्दर आता—कभी आनन्द मे कभी विषाद मे। फिर पुस्तक की ओर देखता। और यह सब मुझे अपनी जगह से दीखा करता था। मेरी उत्सुकता बढ गई और एक दिन मैंने उस मालिक को बाहर गया जानकर वह पुस्तक उठा ली। उसे मालूम पड गया। उसने पुलिस मे खबर कर दी—बस, मुझपर मुकदमा चला और मै यहा चला आया।" लड़के का सारा कथन सत्य नहीं था; पर पुस्तक की चोरी निमित्त मात्र रही इतना निश्चित था। पुस्तक की चोरी के कारण अपनी जिन्दगी के तीन-चार बरस यह लडका यहाँ बितायेगा, यह खयाल मेरे मन मे आया और

राजकन्या का अपहरण

और मुझे अपने जीवन की लगभग चालीस बरस पुरानी घटना याद हो आई। हमारे निवासस्थान से एक फर्लाङ्ग के अन्तर पर हमारे एक

मालदार सबन्धी रहा करते थे। उनका परिवार बडा था। पाच-पचास जवान, अनेक नौकर, प्रबन्धक आदि लगभग सारी व्यवस्था एक राज्य जैसी थी। हम हमेशा उनके यहा आते-जाते रहते थे। १६०८–१६०६ का समय रहा होगा। पूना का वातावरण उन दिनो बडा विलक्षण था। जब्त की हुई किताबो का पढ़ना बड़ा भारी पराक्रम समझा जाता था। कही किसी मन्दिर की दीवार पर अंग्रेजो के खिलाफ लिखना या एकाध हस्तलिखित पत्र को सार्वजनिक जगहो पर चिपकाना तो रण-दुर्ग पर विजय प्राप्त करने के सदृश प्रतीत होता था। हम चौदह-पन्द्रह वर्ष की उम्र के लडके एक जगह जमा होते थे। गांव से वाहर किसी जगह बैठकर गुप्त चर्चायें किया करते थे। तीसरी मजिल की उपमजिल मे बैठकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपायो पर विचार किया करते थे। ऐसी इच्छा होती थी कि कुछ न कुछ अद्भुत कार्य किया जाय। उस काल और उम्र दोनो ही की दृष्टि से इस प्रकार की इच्छा का होना स्वाभाविक था। समाचारपत्रो मे राजनैतिक डकैतियो का वर्णन पढ़ते समय चित्त रोमाचित हो उठता था। भिन्न-भिन्न षड्यन्त्रो के मुकदमो के वर्णनो से भरे हुए समाचारपत्रो के अंक क्षणिक महत्व के नहीं प्रत्युत नोटो की भाँति मूल्यवान प्रतीत हुआ करते थे। एक दृष्टि से वे करेंसी नोट का काम भी करते थे, क्योंकि हमारे विचारो का विनिमय उन्ही की सहायता से हुआ करता था। इस परिस्थिति में हम लोगो की मानसिक सृष्टि किसी खतरे की परवाह नहीं करती थी और लौकिक कल्पनाओं को स्वीकार नही करती थी। इन्ही दिनों एक सुप्रभात में किसी काम से मै अपने ऊपर उल्लिखित सबन्धी के घर पर गया। बड़े दरवाजे मे से होकर जाने के बाद एक ओर के ओसारे पर क्लर्कों के बैठने की जगह थी और मसनदो पर हिसाब की बहियाँ तथा अन्य कागज रखे रहा करते थे। उस दिन अनायास ही एक आले की ओर नजर गई।

वहाँ एक रग-बिरगी गत्तेवाली किताब दिखाई दी। सहज उत्सुकता से मैं उसके पास गया। वह आपटे का लिखा 'रूप नगर की राजकन्या' नामक उपन्यास निकला। आपटे का 'गड आला पण सिह गेला' नामक उपन्यास मै इससे पूर्व पढ़ चुका था। 'उषःकाल' का भी कुछ हिस्सा मैने पढ़ डाला था। आपटे के उपन्यास कैसे होते है, इसका ज्ञान मुझे था। प्रसग काफी दुर्धर था। प्रलोभन असंवरणीय था। पुस्तक के मुख पृष्ठ पर अंकित चित्र ही बता रहा था कि मुझे इस मौके पर किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए। ओसारे का खबा मुगल सेना के किसी खान की तरह नज़र आ रहा था। इधर-उधर आने-जाने वाले जवान लोग सेना की भाँति मुझ पर आक्रमण करने के लिए आ रहे है, ऐसा भास हुआ। ऐसा प्रतीत हुआ कि चित्र वाली राजकन्या असहाय दृष्टि से मेरी ओर देख रही है और एक क्षण का भी बिलंब लगाने से एक युग का नाश हो जायगा ऐसा वह सूचित कर रही है। विचार करने के लिए समय नही था। मन को विवेक की बीमारी अभी नही लगी थी। दक्षिण हस्त ने पुस्तक पर कब्जा किया, वाम हस्त ने कुर्ता ऊपर उठाया, और एक क्षण के अन्दर 'रूप-नगर की राजकन्या' हृदय-कपाट मे अदृश्य हो गई। पर अगभूत बुद्धूपने की भीति तो थी ही। चेहरा ऐन मौके पर विश्वासघात न कर बैठे इसलिए 'अभी आया' 'अभी आया' ऐसा कहते और किसी के बुलावे का प्रत्युत्तर देने का आभास उत्पन्न करते हुए ओसारे मे से अगले दालान मे और वहाँ से बडे दरवाजे मे होते हुए यह राजपूत वीर सही सलामत बाहर निकल आया! मेरा जन्म राजपूताने का है, अतः मै अपने को अभिमानपूवक राजपूत कहता हूँ और अब मेरे उपरिलिखित पराक्रम को सुनकर मेरे इस दावे को कौन अस्वीकार करेगा!

नही चाहिए यह राजकन्या !

अब, यह लाई हुई लूट कहां रखी जाय इस बात की उधेड़-बुन शुरू हुई। सीधे तीसरी मजिल पर जाकर पहले मैंने उस बेचारी राजकन्या को निर्दयतापूर्वक टांड मे डाल दिया। तत्पश्चात् दोपहर से मैंने उसे पढ़ना शुरू किया और रात तक खत्म कर डाला। हल्दीघाटी का युद्ध, सामलदास का स्फूर्तिदायक कवित्व तथा उन राजपूत वीरो के पराक्रम की गाथा पढ़ते-पढ़ते चित्त सुध-बुध खो बैठा। "पतिया लिखत है, छतिया फटत है, कलम न धरत है हाथ ! दुष्ट अलमगीर कपट कमायो राखो श्री हरिलाज।" राजकन्या के इस पत्र के भीतर का वृत्तान्त पढते ही मै एकदम उठकर खड़ा हो गया। इधर-उधर देखने लगा, पर कोई नजर न आया। मकान मे सन्नाटा था। बाहर रास्ते पर भी सन्नाटा था। पुस्तक खत्म हो गई। रात भर नींद न आई। पुस्तक की सारी घटनायें आँखो के सामने खड़ी हो जाती थीं। थोड़ी-सी अधकच्ची नीद आती और फिर स्वप्न मे वही घटनायें और तीव्रता से आ जाती। तत्पश्चात् धीमे-धीमे वे सारी अद्भुत घटनाएं अदृश्य होने लग गईं। रात का अंधेरा कम होने लग गया। प्रभात हो आया। उसके साथ ही मस्तिष्क मे विचार आया कि किसी को पूछे बगैर मै जो यह किताब ले आया हूँ यह ठीक किया है क्या ? मैंने यह चोरी तो नहीं की, ऐसी शंका होने लगी। पुस्तक वाली राजकन्या ने पत्र लिखकर राजा को बुलाया था। मुझे पुस्तक ले जाने के लिए किसने कहा ? प्रश्न तो पैदा हो गया, पर उसका कोई उत्तर नहीं देते बना। ऐसा काम इससे पहले कभी किया नहीं था। अतः मन और ज्यादा घबराने लगा। कल अगर किसी को यह मालूम पड़ जाय कि यह पुस्तक मै उठा लाया हूँ तो क्या होगा ? पढ़ने के लिए माग ली होती तो नहीं मिल सकती थी क्या ? इस तरह के अनेक प्रश्न उठने लगे। किया हुआ

काम यदि पराक्रम मान भी लिया जाय तो भी उसे पुण्यकृत्य तो नही माना जा सकता। कुछ गलती हो गई ऐसा प्रतीत होने लगा। उसके बाद एकदम यह विचार आया कि पुस्तक जहां से लाया हूँ वहीं रख आऊँ तब तो ठीक हो जायगा न। इस विचार के आने पर आनन्द अनुभव हुआ। मन पर पडा हुआ बोझ उतरता हुआ-सा नज़र आया। उस मार्ग की बाधाएँ भी दिखाई देने लगीं। पुस्तक रखते समय किसी ने देख लिया तो ? किसी ने पकड लिया तो ? ले जाते समय कुछ बुरा कर रहा हूँ, यह भावना ही नही थी, और अब उसे वापस करते समय मन कुछ लंगड़ा-सा हो रहा था। अब काम कैसे होगा ? पुस्तक के ऊपर वाला चित्र कुछ उपाय निर्देश नही कर रहा था। सामलदास की कविता भी कोई प्रेरणा नही दे रही थी। राजकन्या का पत्र अब दुर्बल साबित होने लगा। काल-स्तब्ध नहीं है, यह एक अच्छी बात है. अन्यथा बड़ी विषमता उपस्थित होगई होती। सवेरा हुआ। कुछ देर बाद मैं उस मकान के दरवाजे तक गया। पर आदमी आ-जा रहे थे, मैं वापस चला आया !

छुटकारा

चार-पांच मर्तबा मैं पुस्तक रखने के लिए गया, पर रख नहीं पाया। इसके बाद वह किताब घर पर ही पडी रही। मन अन्य बातों में लग गया और कुछ दिनो बाद हमारे घर में से वह 'रूपनगर की राजकन्या' अदृश्य हो गई। मुझे संतोष हुआ। मैं इस सारी घटना को भूल गया। उसकी दोबारा याद कुछ दिन पहले धारवाड के [illegible] की पाठ-शाला में हुई। स्मृति आनन्दित कर रही थी, विषण्ण कर रही थी। इस समय प्राप्त अनुभवों से और उपार्जित ज्ञान से नाना प्रकार के विचार मन में उत्पन्न हुए। याद आया कि लोकमान्य ने एक जगह लिखा है कि ज्ञानप्राप्ति के लिए पुस्तकों का चुराना पाप नहीं है। आप्तवाक्य का प्रमाण

मिल गया। वकीली का ज्ञान कहने लगा कि अपराध यदि अपराध के इरादे से किया गया हो तभी अपराध होता है। जो वस्तु एकोपयोगी है, अर्थात् एक बार उपभोग लेने के पश्चात् जो नष्ट हो जाती है, उसका अनधिकृत उपभोग लेना चोरी है। परन्तु जो वस्तु बहुउपयोगी है उसका अनधिकृत उपभोग लेना चोरी कैसे हो सकती है? कारण वह वस्तु तो फिर बची रहती ही है। पुस्तक को एक ने पढ़ा, मालिक की अनुज्ञा के बगर पढा, तो वह कृत्य चोरी कैसे हो जायगा? सामाजिक पार्श्वभूमि का विचार न करके किसी काम को गुनाह साबित करना कैसे उचित कहा जा सकता है? सामने खडे हुए लडको को यदि वास्तव मे अपराधी साबित करना हो तो फिर मैं कैसे अपराध से बरी हो सकता हूँ? ज्ञान की लालसा से किया गया अपराध यदि अपराध नही तो जीवित रहने के लिए, बेकारी के कारण निराश होकर, किये गये कृत्यो को गुनाह कैसे कहा जाय? इस प्रकार के अनेक विचार सिर मे दर्द पैदा करने लग गये। पर स्पष्ट कहूँ तो इन विचारों से मुझे सतोष ही हुआ। उस लडके की ओर सहानुभूति से देखना जितना मेरे लिए सुलभ हो सका उतना मेरे अन्य सहकारियो के लिए न हो सका होगा। पर कौन कहे, उनमे से भी किसीने बचपन में ऐसा ही कुछ काम किया हो? एक बार मेरे मन में आया कि मैं अपनी यह स्मृति उन्हे भी सुना दूं, पर उसी बीच वरिष्ठ अधिकारी ने बताया कि भोजन का समय होगया है और मन की बात मन ही में रह गई। तथापि यह 'गुह्यात् गुह्यतरम्' मैंने आज कह डाला और अब मै संतोष की सांस ले रहा हूँ।

स्वर्गीय भूलाभाई देसाई

"निःसदेह प्रेम और जीवन मुझे आकर्षित करते है, तथापि स्वातन्त्र्य के लिए मै इन दोनो का परित्याग करने मे हिचकिचाहट महसूस नहीं करूँगा।" १६३२ के जुलाई महीने के अन्त मे नासिक जेल के राजकीय कैदियों के समक्ष भाषण करते हुए स्व० भूलाभाई देसाई ने उपरिनिर्दिष्ट शब्दो मे उपसंहार किया था।

सन् ३२ मे नासिक जेल के अन्दर भूलाभाई देसाई तथा अनेक राजकीय कैदियो को भिन्न-भिन्न स्थानो मे रखा गया था और उन्हे एक जगह लाने के लिए किये गये सारे यत्न असफल हो गये थे। जून के लगभग मै और अन्य दस-बारह राजकीय कैदी नासिक जेल मे आकर प्रविष्ट हुए और वहा आने के पश्चात् अनेक युक्तियो से, महीने में कम-से-कम एक बार इकट्ठे होने की अनुमति हासिल कर ली। उस पहले प्रसग मे भूलाभाई ने जो भाषण दिया था, उस समय के ये उद्गार है। एक वर्ष तक भूलाभाई हमारे साथ रहे। उनका व्यवहार सबके साथ मधुर

था। वह अपने साथ जो ग्रन्थ ले आये थे तथा उन्होने हमे अपने व्यवसाय के अनुभवो की जो बातें सुनाई, उनसे हममे से अनेक को पर्याप्त ज्ञान तथा मनोरंजन हासिल हुआ था। उन दिनो हम उन्हे एक राजनीतिज्ञ पुरुष की अपेक्षा वकालती पेशे मे अत्युच्च शिखर पर पहुंचे हुए व्यक्ति की दृष्टि से देखा करते थे।

पंत जी की सिफारिश

सन् ३४ मे चुनावो के निमित्त से स्व० भूलाभाई देसाई के साथ स्थापित मेरा परिचय बढता चला गया। सबसे पहले निकट परिचय का अवसर सन् १९२९ मे 'नवाकाल अभियोग' के दिनो मे आया। हमारे मराठी नाट्यच्छटा लेखक श्री दिवाकर के शब्दो का प्रयोग करते हुए कहना हो तो 'मै भी उसमे था'। उस समय अदालत के सामने किया गया उनका बचाव का भाषण आज भी मेरे कानो मे गूंज रहा है। चुनाव के दिनो मे यद्यपि उनके वक्तृत्व का विशेष बोलबाला नही हुआ, तो भी उनके व्यक्तित्व के प्रभाव के कारण व्यापारी वर्ग से मत प्राप्त करने मे बड़ी सहायता मिली।

चुनाव के पश्चात् १८ जनवरी १९३५ को डा० अन्सारी के भव्य प्रासाद मे असेम्बली कांग्रेस-पक्ष के सभासदो की पहली बैठक हुई थी। कुछ लोगो के मन मे था कि पं० गोविन्दवल्लभ पन्त को नेता चुना जाय। पन्त जी शरीर से जितने भव्य हैं, मन से तथा विद्वत्ता से भी उतने ही भव्य हैं। उनकी ओर देखते ही न्यायमूर्ति रानाडे का स्मरण हो आता है। न्यायमूर्ति रानाडे के समान ही प्राय: सब विषयो मे उनकी पारंगतता है। भूलाभाई के सम्बन्ध मे किसी का मन पूर्वग्रहदूषित था सो बात नही थी, तथापि कांग्रेस के राजनीतिक क्षेत्र मे उनका प्रवेश अत्यन्त अभिनव था, एतावता यदि किन्ही लोगो के मन मे उनके प्रति किंचित् अविश्वास

की भावना काम करती थी तो वह क्षम्य ही थी। तथापि स्वयं पंत जी ने नेतृत्व के लिए भूलाभाई का नाम सुझाया था, अतः नेतृ-निर्वाचन के समय प्रायः सदा उत्पन्न होने वाले एक दृष्टि से अत्यन्त नाजुक और एक दृष्टि से अत्यन्त नाशकारी सारे बखेड़े दूर हो गये।

दयिता का दंतव्रण

भूलाभाई देसाई ने १६३५ से लेकर १६४४ के अन्त तक मध्यवर्ती धारासभा के कांग्रेस-पक्ष का नेतृत्व किया। उनके नेतृत्व और कर्तृत्व पर विस्तारपूर्वक अपनी राय ज़ाहिर करना इस समय अप्रस्तुत एव अप्रासांगिक है, तथापि किन्ही बातो पर प्रकाश डालना आवश्यक है। उनके पहले भाषण से लोग इतने मुग्ध हो गये थे कि उनके भाषण के पश्चात् कर्नल गिडने ने खुले आम यह कहा कि ऐसा वक्तृत्व यदि राउन्ड-टेबल-कांफ्रेंस के समय हुआ होता तो भारत के राजकीय इतिहास की रूपरेखा ही भिन्न हो जाती।

उनका वक्तृत्व अत्यन्त मधुर था। कभी कुछ कठोरता रही भी तो वह दयिता के दंतव्रण जितनी ही रहती थी, ऐसा यदि हम कहे तो इससे सदाभिरुचि में कोई बाधा आयेगी, ऐसा प्रतीत नहीं होता। आह्वान की अपेक्षा आवाहन से, आवाज़ की अपेक्षा आशय से, वह श्रोतृवृन्दकी हृदय ग्रन्थियों को खोला करते थे। उनके भाषण के अनन्तर होने वाला परिणाम मानवीय मन के लिए अंगभूत सौजन्य ही का परिणाम हुआ करता था। बहस के लिए आने वाले विषयो के बारे मे विस्तार से तैयारी वह शायद ही कभी किया करते थे। इतना ही क्यो, घटो होने वाले अपने भाषणो के लिए भी वह कभी नोट नही लिया करते थे। पर उनके भाषण में एक के पीछे एक मुद्द सुव्यवस्थित और सुसगत रूप से रचे हुए दिखाई दिया करते थे। वाद-विवाद मे अनेक बार शब्द-रचना के तथा

अन्य मुद्दो के बारे मे उलझने पैदा हो जाया करती थी, पर वस्तुस्थिति का आकलन तथा आवश्यक अभिप्राय को व्यक्त करने वाली शब्द-रचना वह इस प्रकार लीलापूर्वक किया करते थे कि हम सब आश्चर्य विमुग्ध हो जाते थे।

कृष्ण की मुरली

प्रसिद्ध क्रिकेट पटु जैक हाब्स का वर्णन करते हुए ए० जी० गार्डीनर ने कहा है कि "बैट क्या था हाब्स का आगे बढ़ा हुआ हाथ का हिस्सा ही था!" भूलाभाई के विषय मे भी कुछ वैसी ही बात थी। सभा-गृह में उनके व्यवहार को देखकर हमे यही प्रतीत हुआ करता था कि वह व्यवहार उनकी व्यक्तिमत्ता का ही आगे बढा हुआ हिस्सा है। उनका भाषण होने वाला है, यह पता चलते ही प्रेक्षकों की गैलरी, सारी सभागृह, अधिकारी वर्ग आदि बडी उत्सुकता से उपस्थित रहता था तथा कृष्ण की मुरली की भांति उनके मनोहारी वक्तृत्व का आकंठपान किया करता था।

मृदुपूंजी वाले

भूलाभाई निर्दोष थे, ऐसा कोई नही कह सकता। विश्व मे ऊपर विनायक और नीचे सपादक को छोड सभी दोष-सहित है। अनेक बार बड़े-बडे प्रश्नो के विषय मे उनकी विचारधारा हमारी दृष्टि मे अशुद्ध रहा करती थी। आर्थिक विषय मे उन्ही के शब्दो मे कहे तो वे मृदुपूञ्जी वाले (मिटीगेटेड कैपीटिलिज्म) व्यक्तियो की कक्षा मे आते थे। मजदूरो के सम्बन्ध मे उनका दृष्टिकोण मूलग्राही नही था। तथापि सहानुभूति उनमें परिपूर्ण थी। सार्वजनिक हडताल के बारे मे जब बिल आया था, उस समय मुझे उनके साथ एक घटे तक झगडना पडा था और वह भी इतना कि वह थोडा क्रोधपूर्वक बोले, "तुम इस प्रकार तर्क कर रहे हो, मानो कोई न्यायाधीश के सामने बहस कर रहे हो!"

मैंने कहा, "आप कुछ भी कहिए पर मेरा कहना काग्रेस की आज तक की नीति के अनुकूल है।"

उन्होने बापूजी अरणे से सलाह ली और मेरा कहना मंजूर कर लिया। यही वृत्ति उनकी विशेषता थी। अपनी नेतागीरी प्रदर्शित करना अथवा औरो पर लादना उनकी वृत्ति मे नही था और उसके कारण उत्पन्न होने वाले गुणो एवं दोषो दोनो के वह एक उत्कृष्ट उदाहरण थे। अपने और अपने अनुयायियो के बीच किसी समय कोई मतभेद उत्पन्न हो जाता था तो वह श्री अरणे की सलाह लेते थे और प्रायः उसके अनुसार आचरण करते थे, यह एक उल्लेखनीय बात है।

राजनीति—जीवन का खेल

प्रारम्भ मे सभागृह के अन्दर मिलने वाली जय और पराजय उन्हे आनन्दित और दुःखित किया करती थी। जो स्थितप्रज्ञता इस सम्बन्ध मे पत और सत्यमूर्ति मे थी, वह प्रारम्भ मे भूलाभाई मे नही थी। क्वेटा-भूकप के स्थगन प्रस्ताव पर हमारा सिर्फ दो मतो से पराभव हुआ था। उसके बाद जब हम अपने पक्ष-कार्यालय मे आये उस समय वह बहुत देर तक व्यथित होते रहे। पराभव उनके चित्त को कचोटे जा रहा था। उस समय सत्यमूर्ति ने उनसे कहा कि पार्लिमेटरी जीवन मे मनुष्य को उसी स्थितप्रज्ञता से व्यवहार करना चाहिए जिससे वकील अदालत मे किया करता है। ऐसा कह कर सत्यमूर्ति ने अगले दिन के काम के सम्बन्ध मे चर्चा की। उस समय भूलाभाई ने अर्थपूर्ण उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा था—"राजनीति वकालत नही है बल्कि वह जीवन का एक खेल है।"

गलती हुई जरूर

उनका स्वभाव अपने सहकारियो के बारे मे अत्यन्त प्रेम भरा था। वह कहा करते थे कि हम सब एक ही परिवार के अग हैं। उनका व्यवहार

भी वैसा ही था। पक्ष-कार्यालय के खर्च का सबसे बड़ा हिस्सा उन्ही की जेब से आया करता था। यद्यपि उनके और उनके अनुयायियो के सम्बन्ध स्नेह और सहकार्य से पूर्ण थे पर किन्ही-किन्ही मौको पर वाचिक मुठभेड हो जाया करती थी। एक प्रसग मुझे स्मरण हो आता है। बीमा कानून की बहस के मौके पर उन्होने जो भूमिका उपस्थित की थी वह पक्ष के निर्णय से थोडी सी हट कर थी। ज्योही उन्होने यह भूमिका उपस्थित की त्योही पक्ष मे नाराजगी पैदा होगई। इस घटना पर विचार करने के लिए आयोजित सभा मे खडे होकर उन्होने कहा—"मैंने गलती की है, आप का विश्वास हो तो मैं आपका नेता बना रहूँगा, अन्यथा हट जाऊँगा।" और तत्काल उनकी आँखो मे अश्रु आगये और वह नीचे बैठ गये। दो मिनट सभा मे स्तब्धता छाई रही। उसके बाद मैंने कहा, "प्रजातान्त्रिक नेतृत्व कैसा होना चाहिए, इसका उत्कृष्ट पाठ आपने हमारे सामने रखा है। हमारा आप पर पूरा विश्वास है और जो कुछ हो गया है उसे रेकार्ड पर छोड़ दिया जाय।" मेरा सुझाव सर्वसम्मति से मंजूर हो गया और पक्ष के निर्णय के अनुसार ही बीमा कानून में सशोधन हो गया।

विश्वासी-पक्ष नेता

एक और नाजुक प्रसग मे, जिसमें उनके वैयक्तिक व्यवहार ही कारणीभूत था, इस प्रकार की अवस्था पैदा हो गई थी। उस समय उनके विरुद्ध बवंडर उठ खडा हुआ था। उन्होने पक्ष के सामने भाषण देते हुए कहा—"मैं यदि ठीक हूँ तो आप मेरे पीछे आयेंगे ही, पर आपकी निष्ठा की परख तो तब है जब आप मेरे गलती करने पर भी मेरे पीछे चलें।" निःसन्देह पक्ष ने इस परख को मान्य नही किया। कारण, इस बार की गलती उनके वैयक्तिक आचरण से सम्बन्ध रखती थी। इस प्रकार के दस बरसो के इक्के-दुक्के प्रसंगो को छोडदे तो यो पक्ष का

उनपर शत-प्रति-शत विश्वास था ।

प्रतिकूल परिस्थिति का शिकार

जेल मे रहने वालो के मत और बाहर के व्यक्तियो के व्यापार के बारे में पक्षनिष्ठ दृष्टि से जो अप्रचार हुआ, यह साफ है कि उसी का प्रभाव भूलाभाई के राजनीतिक जीवन पर पड़ा । आज़ाद हिन्द फौज के मुकदमे मे उनके द्वारा की गई देश-सेवा तथा वकालत मे प्रदर्शित किया गया नैपुण्य, बचाव के काम मे व्यक्त की गई अलौकिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप की उच्च एव नीतियुक्त भूमिका आदि बाते तो नये इतिहास की वस्तुएँ हैं।

भूलाभाई क्रातिकारक नही है, ऐसा कहकर उनको बदनाम करना उचित नहीं, क्योकि उन्होने वैसा दावा कभी नही किया । प्रयत्नो की पूर्ति पाश्चात्य देशो मे सत्ताप्राप्ति अथवा अधिकार प्राप्ति से होती है । अधिकार प्राप्ति का अर्थ है मानवीय विधायक कर्तृत्व के लिए प्राप्त हुआ सुवर्ण अवसर । गत पचास बरसो का इतिहास इसी बात का साक्षी है कि इन बरसो मे क्रातिवृत्ति वाले ही नही, अपितु अनेक कर्तृत्ववान् व्यक्तियो तथा उनकी विधायक वृत्तियो को पनपने का उचित अवसर नही मिल पाया, जिसके फलस्वरूप उनकी कीमत मिट्टी के बराबर होगई । अनेक वर्षों से भूलाभाई की योग्यता की जानकारी होते हुए भी, उनके गुणो को मान्यता प्राप्त होने पर भी, उन जैसे व्यक्ति को सरकार विरोधी पक्ष मे काम करना पड़ा, यह एक दुर्भाग्य की वस्तु है ।

बड़ा भाई चला गया

विधायक वृत्ति वाले तथा कर्तृत्ववान् व्यक्तियो को सत्ता नही मिल पाती और जो व्यक्ति क्रातिकारक प्रवृत्ति वाले है उन्हे अप्रिय प्रतीत होने वाले विधायक कार्य मे लगाया जाता है, ये दोनो बातें इस देश मे एक

ही समय में हो रही हैं ! भूलाभाई और अधिक काल तक जीवित रहते तो इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने अधिक कार्य करके दिखाया होता। उनकी मृत्यु से एक उत्कृष्ट वकील, एक उत्तम नागरिक तथा एक ईमानदार कार्यकर्त्ता लुप्त होगया और व्यक्तिशः कहना हो तो, बहुतों को यह प्रतीत होता है कि हमारा एक बड़ा भाई ही चला गया !

खटकुने की पुकार

मन-ही-मन उद्भूत होने वाले विचारो का प्रभाव स्वयं मन पर पडता है। कोई आनन्ददायक विचार आया कि मन तत्काल प्रसन्न हो उठता है, इसी तरह यदि कोई दुःखद विचार मन में आया तो समस्त मानसिक वातावरण उदास हो जाता है। मन के अन्दर के विचार मन ही सुनता है और तदुद्भूत प्रभावो का अनुभव करता है और जब मनोगत विचार वाणी द्वारा बहिर्गत होते हैं तब उनका आकर्णन बोलने वाला भी करता है और सुनने वाला भी करता है।

मनुष्य ने स्वतः एकान्त मे कुछ गुनगुनाया अथवा दर्पण के सामने खड़े होकर मुँह टेढ़ा-मेढा करके एकाध शब्दो का उच्चारण किया तो उस समय वह स्वयं श्रोता का काम कर रहा होता है और उसके अपने शब्दो का ही उस पर तथा उसके मन पर प्रभाव पड़ा करता है। शब्द का स्वयं वक्ता पर जैसा प्रभाव पडता है वैसा श्रोता पर भी पडता है। मगर यह प्रभाव कितना पड़ता है, कैसे पड़ता है, किस प्रकार पड़ता है

यह सब श्राता की मनःस्थिति पर अवलबित रहता है। बोलने वाला बोल जाता है, अनेक बार उसे यह भी ज्ञात नहीं रहता कि उसके सामने श्रोता खडे है, किंबहुना वह किसी व्यक्ति-विशेष को उद्देश्य करके बोल रहा होता है, सो बात भी नहीं रहती। कितनी ही बाते सामाजिक परम्परा के वशीभूत होकर अथवा प्रचलनक्रम के वशीभूत होकर कही जाती है। सबेरे के समय वासुदेव गाता हुआ फेरा लगाता है। श्रोता की मनःस्थिति के अनुरूप विचार उस गाने को सुनकर उठा करते है। रात के समय कोई फकीर दोहे गाता हुआ आता है। उनके भीतर रहने वाले भाव कुछ श्रोताओ के चित्त पर पर्याप्त प्रभाव डालते है और कुछ व्यक्तियो के चित्त पर उनका कुछ भी प्रभाव नही पडता।

सबेरे से लेकर रात होने तक चाखते-चिल्लाते जाने वालो का, काव्य-पाठ करते जाने वालो का, भिन्न-भिन्न पदार्थो के सम्बन्ध मे अथवा अन्य किन्हीं सुविधाओं के सम्बन्ध मे ऊचे स्वर से पुकारते हुए गलियो मे सचार करने वालो का यदि लेखा-जोखा किया जाय तो हमारा जीवन कितनी विविधताओ से भरा हुआ है इस बात का परिज्ञान होगा। प्रत्येक कविता, प्रत्येक पुकार समाज के भिन्न-भिन्न पहलुओं का प्रतिबिम्ब लिये रहती है। समाज की प्रथाओ का सार उसमे समाया हुआ होता है। समाज के सुख-दुःखो का हिसाब उन्हे देखकर कोई लगाने लग जाय तो वह उसका अप्रयास न होगा। इतना ही क्यो उन्हे देखकर इस बात का परिज्ञान भी होता है कि समाज मे आध्यात्मिक भावना का स्तर किस प्रकार का है।

शब्द मे कितनी विराट् शक्ति है ? उपनिषद् मे ब्रह्म का शब्दस्वरूप मे वर्णन किया गया है। शब्द मे अन्तःकरण से लेकर पर्वत पर्यन्त समस्त सूक्ष्म एवं समस्त जड वस्तुओं एवं भावनाओं को भेदने की शक्ति है। उन्हे मिलाने की भी शक्ति है। आशा एव निराशा, सुख एवं दुःख दोनो

प्रकार की भावनाओं को प्रसूत करने वाला यह महान् शब्द अनेक बार एक ही व्यक्ति के मन मे दोनों भावों को एक ही साथ उत्पन्न करता है।

यह अनुभव जहा विचित्र है वहा कुतूहल उत्पन्न करने वाला भी है। वास्तव मे वह हरिजन जो हर रोज सबेरे आठ या नौ बजे के समय हमारी गली मे से होकर "चारपाई और बच्चे का पालना बनवालो!" चिल्लाता हुआ जाया करता था सो कोई दुनिया के विरुद्ध बात करता है, ऐसी बात नहीं थी। विश्व की रीति के अनुसार इस पूना जैसे बड़े शहर मे हर रोज पाच-पचास प्राणी जन्म लिया करते हैं और इसी कारण इस वृद्ध हरिजन का सामाजिक जीवन मे स्थान है। अतः जिस समय वह उपर्युक्त स्वरूप की घोषणा किया करता है उस समय वह अपना नित्यकर्म ही किया करता है। मेरी स्मृति-शक्ति जिस सीमा तक काम करती है उस कालसीमा से उसका यह नित्यकर्म चालू ही है। जन्म लेने वाले बालकों की सुविधा का खयाल करने वाला, एक दृष्टि से अनन्त उपकार करने वाला, यह पुण्य पुरुष कुछ अजरामर तो है नहीं, किंबहुना प्रतिक्षण यह भी मरणाभिधावी मार्ग पर आगे बढ़ता जा रहा है। पूना शहर इतना बड़ा, पर अपने दैनिक व्यवसाय का आरम्भ वह हमारी गली ही से करता था, मेरी सम्मति मे इसका कारण भी पर्याप्त महत्वपूर्ण था। हमारी गली से श्मशान बिलकुल सटा हुआ है। हमारा पडोस मानो मृत्यु ही का पडौस है। रात को अगर कभी वहां गैस की बत्ती नजर आई तो समझना चाहिये कि अवश्य ही अंधेरे मे किसी का मार्ग प्रदर्शन करती हुई वह उसके लिए जीवन की परिबन्ध-रेखा के पर पहुंचने का सामान तैयार कर रही है। कीर्ति के सारे रास्ते अन्ततः श्मशान ही मे जाकर विराम पाते है। मालदार, भाग्यवान, गुणवान तथा दुःखी दरिद्री, नसीब के मारे सब हमारी गली के इस श्मशान घाट पर आकर, इच्छा हो या नहीं, साम्यवादी बन जाते है।

कहना चाहिए बना दिये जाते हैं। एतावता इस दृष्टि से पूने के सारे रास्तो का अन्त इसी पवित्र भूमि में होता है। और यह हरिजन भी ठीक इसी जगह पर नदी को पार करके अपने नैत्यिक उद्योग का श्रीगणेश किया करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह अपने इस घोषणावाक्य से गीता के 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च' वाले सिद्धात की ओर समाज का ध्यान आकर्षित करना चाहता है। व्यक्ति आया और चला गया पर मानवीय जीवन का प्रवाह अजस्र रूप से गतिमान है। यात्री आयेंगे और चले जायेंगे, पर मार्ग उसी प्रकार विद्यमान रहेगा। मानवीय जीवन की स्पन्दनशीलता जब तक अनवच्छिन्न है तब तक हमारे इस हरिजन का काम भी चलता ही रहेगा। वह चला जायगा तो उसके कम का उत्तराधिकारी उसके काम को करता चला जायेगा यह जाहिर है। उसका कार्य अखंड और अजरामर है। मानवीय जीवन भी अखंड और अजरामर है। एतावता समाजगत व्यक्ति के मन के भाव भी इसी प्रकार अखड इसी प्रकार अजरामर रहा करते है। हम मर जायेंगे, आज नहीं तो कल चले जायेंगे, पर मानवीय मन मे यह लालसा बनी रहती है कि हमारे पीछे कोई-न-कोई अवश्य बना रहे। धर्मशास्त्र इस लालसा का कारण भले ही पिडोदक क्रिया की कामना को बताये, पर निश्चित ही मानव मन इस लालसा को किसी अन्य ही हेतु से स्वीकार करता है। भोगेच्छा को पुनीत करने वाली यह भावना है। अपत्य लालसा नित्य की अनित्य पर विजय प्रदर्शित करने वाली पार्थिव वस्तु मे उत्पन्न होकर अपार्थिव एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए कारणीभूत होने वाली एक महान् शक्ति है। निःस्वार्थता की चरम सीमा तक पहुचने के अर्थ प्रोत्साहन प्रदान करने वाली एक प्रेरणा है।

महाश्वेता

और यदि ऐसा न हुआ होता तो मैंने अपनी गली के मोड पर रहने वाली महाश्वेता के लिए मन-ही-मन आदर का स्थान न प्रदान किया होता। मैं उस कुलवधू को महाश्वेता कहता हूं, इसका केवल यही कारण नही कि वह श्वेत कपडे पहना करती है, प्रत्युत यह कि उसके आचार और विचार भी उतने ही पवित्र है। लगभग एक चौथाई सदी पहले लोगो ने उसे प्रथमतः बडे सजधज से निकलने वाली बारात मे देखा था। उस समय वह "दश दोष विवर्जिता" नववधू के रूप मे हमारे मुहल्ले मे आई थी और गृहिणी बनी थी। घर के सभी छोटे-बडे उसे स्नेह से देखते थे। इतना ही नही अडोस-पडौस के लोग भी उसकी तारीफ़ किया करते थे। बरस के बाद बरस आये और गुजर गये, वृद्ध सास और ससुर ने प्रपंच रिचालन का सारा भार उसके ऊपर डालकर इहलोक से बिदा ले ली। वे लोग आखिरी दिनो मे कुछ-कुछ उदास ही से रहते थे। कारण पौत्र-मुख देखने का सौख्य उन्हे उपलब्ध नहीं हो पाया था। इतनी बडी दौलत, इतना बडा नाम, पर उत्तराधिकारी कोई नही, इस जानकारी की आच चालू पीढ़ी के पति-पत्नि तक पहुँचती जा रही थी। और प्रतिदिन उन्हे इस बात की जानकारी वह वृद्ध हरिजन अपनी पुकार से करवा दिया करता था तथा इस समय भी कराता रहता है।

जब-जब वह सबेरे पैर में फटा-पुराना जूता पहन, कमर मे मैली-कुचैली धोती लपेटे, जर्जर हुए से मुंडासे (मुंडोष्णीष) को सिर पर बाध तथा कधे पर चारपाई की बान लटकाये हमारे दरवाजे के सामने से (चारपाई और बच्चे का पालना बुनवालो !) चिल्लाता हुआ जाता है तब मेरे मन मे आता है कि एक सौ चालीस धारा लगा कर उसका आना

ही बन्द कर दिया जाय। अब तक दस-बारह बार हमने घर मे उसे काम करने का मौका दिया। तो भी यह अति तृष्ण फिर हमसे अपनी ग्राहकी करवाना चाहता है, इसके क्या मानी हुए ?

पर राजनीति के अनेक धक्के-चपेटे खाकर, दुनिया के अनेक अनुभव हासिल करके मैं अब पूरा विवेकी बन गया हूँ। मेरा यह कबूली जवाब "प्रभावी नेतृत्व" के लिए मुझे भले ही नालायक साबित करता हो तथापि "विधायक कार्य" के लिए मैं अनुपयोगी नहीं हूं, इस बात को अवश्य जाहिर करता है। इतनी बात जरूर हैकि मै उस पर टूटा नही पड़ता हूँ। और मै इतनी आतुरता दिखाकर करू गा भी क्या ? आडे वक्त सामर्थ्य धारण करना जैसे प्रभु की देन है, उसी प्रकार सन्तान की प्राप्ति भी प्रभु की देन है, ऐसी मेरी अनुभवो के पश्चात् निर्मित हुई धारणा है।

विश्वगत वैषम्य एव नैर्घृण्य का अवलोकन करके किसी चार्वाक को प्रतीत होगा कि ईश्वर इस जगत् का कारण नही है। पर अन्य व्यक्ति कहेगे कि इन्हीं बातो के लिए ईश्वर को जगत् का कारण मानना चाहिए। अपमार्ग किवा अयुक्तमार्ग से उपार्जित की हुई सम्पत्ति को समाज परमेश्वर की देन मानता ही है न ! इसी न्याय से समाज दारिद्रय और कष्टो को भी सहन करने की सीख दिया करता है। और यह हमारे समाज की सीख जीवन की नैतिक प्रतिष्ठा है। इससे जहा सामाजिक संघर्ष कम होता है वहा वैषम्य मे भी मानसिक समाधान मानने मे विवेक माना जाता है। और इसी कारण से औरस सन्तान के अभाव में औरो के लडको को अपना लड़का मानकर चलने वाली स्त्री समाज मे उन्नत वातावरण निर्माण किया करती है।

हर रोज प्रातःकाल इस वृद्ध समाज-सेवक के घोषणा-वाक्यों के द्वारा अपने आयुष्य के वर्म के, जीवन की अपूर्णता के, मन के भीतर गहराई

तक पहुचे हुए विषाद के, स्पष्ट रूप में आंखो के समक्ष उपस्थित किये जाने पर उसे शांत भाव से देखना और श्रवण करना कोई आसान काम नही है। स्त्री के लिए वन्ध्यत्व से बढ़कर अन्य कोई दारुण दुःख नहीं है। और जिस स्त्री को इस बात का ज्ञान हो कि इस वन्ध्यत्व के कारण वह समाज का ऋण नहीं उतार सकती, उसके लिए यह जीवन क्षण-क्षण के लिए मरणप्राय हो जाता है। केवल अपने गुण ही नही प्रत्युत अपने दोषो को भी अपनी सन्तति मे अवतीर्ण हुआ देखने मे माता-पिता को एक प्रकार का सूक्ष्म आनन्द हुआ करता है। क्यों होता है यह कौन बता सकता है, और किन शब्दो में बता सकता है!

मातृत्व से स्त्री-जीवन को पूर्णता प्राप्त होती है तथा पराक्रम से पुरुषार्थ सिद्ध होता है। मुसोलिनी कहा करता था कि राष्ट्रीय पराक्रम, धैर्य, स्वार्थ-त्याग इत्यादि बातो के लिए युद्ध द्वारा अवसर प्राप्त हुआ करता है। एत-एव राष्ट्र के परिपूर्ण विकास के लिए युद्ध की आवश्यकता है। अथ, स्त्रियो के बारे मे वह कहा करता था कि उनके सद्गुणो के विकास के लिए मातृत्व की आवश्यकता है। आज इंग्लैण्ड मे दो लाख प्रौढ़ कुमारियो की विद्यमानता के कारण एक बडी भारी सामाजिक समस्या उत्पन्न हो गई है। विवाह के अभाव मे तथा विवाह जिस सुख एवं जिस पूर्णता का कारण है उस अपत्य सुख के अभाव मे इन कुमारिकाओं का जीवन अस्थिर तथा भ्रान्त हो गया है। सामाजिक जीवन मे बहुत बड़े पैमाने पर असमाधान का रहना समाज के लिए एक भारी खतरे की बात हो जाती है। प्राप्त परिस्थिति को दैवायत्त वस्तु कहकर सन्तोष मानने के लिए कहने वाला वेदान्त उस देश मे नहीं है। दैववाद के कारण मनुष्य प्रयत्न-पराङ्मुख हो जाता है यह सत्य है, तथापि जीवन के किन्ही क्षेत्रो मे संचार करने के लिए उसे खुला छोड दिया जाय तो समाज का कोई बहुत बड़ा अनर्थ हो

जायगा ऐसी बात नही है।

एतादृश दैववाद पर आत्यान्तिक विश्वास रखकर धीरगम्भीर भाव से अपने जीवन-पथ का अनुक्रमण करने वाली इस भगिनी की ओर जब मैं देखता हू, मेरा मन नम्र हो उठता है। हर रोज ठीक आठ-नौ बजे के करीब सबेरे वह अपने मकान के छज्जे पर आजाती है और विवाह-सस्कार के समय गौरीहर नामक विधि के लिए बैठते समय नववधू के मन मे जो उत्सुकता, जो मीठी बेचैनी उत्पन्न होती है, बिलकुल उसी उत्सुकता से वह उस वृद्ध हरिजन का मार्ग देखा करती है। सूर्य कभी उदित होना भूल जाय, पर वह अपने पूना-निवास के दिनो मे अपने छज्जे पर आना कभी नही भूलेगी।

वह हरिजन रास्ते पर चलता जाता है और हर एक मिनट के पश्चात् मराठी मे "बाज-पालणा विणायचा आहे का बाज-पालणा" इस प्रकार चिल्लाता हुआ जाता है। दृष्टिपथ मे आने से लेकर दृष्टिपथ से निकल जाने तक अनिमेष नेत्रो से उस वृद्ध को देखने वाली, श्रुतिपथ मे आने से लेकर श्रुतिपथ से बाहर जाने तक उसके उन शब्दो को कान लगाकर सुनते हुए खडी होने वाली इस भगिनी का दृश्य मै अनेक वर्षो से देखता चला आ रहा हूं। मै समझता हू यदि किसी दिन ऐसा घटित न हो तो उस दिन निश्चय ही सारा दिन उसे सूना-सूना-सा तथा दुर्दिन का-सा होता होगा। जख्म को अगर थोडा धक्का लगता जाय तो दुःख होता है, पर उसके साथ ही थोडा भला भी महसूस होता है। हरिजन के शब्द कान मे पडते ही उसके मन मे कौन-सी भावना उत्पन्न होती होगी? किस प्रकार के विचार आने लगते होगे? दुःख के, मत्सर के, असन्तोष के, अथवा अन्य ही किसी प्रकार के? पडौस के बच्चे जब उसके पास आते होगे और प्रसग-वशात् कभी उनके मुंह से "आई" (मां) शब्द निकलता होगा, तब उसे

क्या प्रतीत होता होगा ? उसके मन मे यह न आता होगा कि कोई उसे भी इसी शब्द से सम्बोधित करने वाला हो ?

मन की भावनाओ को आज नही तो कल उचित शब्द मिल जायगा। कम-से-कम टेढ़े-मेढे ही क्यो न हो, किसी-न-किसी प्रकार के शब्दो मे वे व्यक्त किये जा सकेगे, पर इस बहन के लिए जीवन का स्वरूप ही उलटा है। उसके लिए शब्द विद्यमान है, पर उसमे अर्थ नहीं है। अपत्यहीन जीवन का अभिप्राय हुआ अर्थ हीन शब्द। आशय शून्य ध्वनि तथा स्वर-रहित सगीत। बच्चे है, पर वह मां शब्द, जो कीमिया की भांति दुःख को सुख बना सकता है, वीरान मुल्क को गुलजार कर सकता है, मलिनता का प्रक्षालन करके मागल्ल का निर्माण कर सकता है, उच्चारित नही हो पाता, इसे कितना बडा दुर्भाग्य कहू ? जब उसकी इस न्यूनता को प्रदर्शित करने वाले विचार उसके मन मे आकर उसे बुरी तरह विपण्ण कर डालते होंगे, उस समय वह उन उद्भूयमान भावनाओ को बहिर्निगम का मार्ग किस प्रकार करती होगी ? भावी आशा का प्रलोभन देकर या किसी अन्य ही मार्ग से ? इस समय भी आशा उसके मन मे अवशिष्ट रही हो तो कहना होगा कि आशा ने अनुभव को परास्त कर दिया। नहीं मुझे ऐसा प्रतीत नही होता।

जिस मानसिक सन्तोषपूर्ण वृत्ति से वह दिन भर व्यवहार करती है, दुनिया के व्यवहारो की ओर वह देखा करती है, उससे यही प्रतीत होता है कि उसने अपनी दृष्टि अधिक सामाजिक तथा अधिक प्रगल्भ बना डाली है, एवं अपनी वैयक्तिक न्यूनता को नास्तिप्रद कर डाला है। अपने जीवन को व्यापक बनाकर उसने अपने आपको निर्दोष तथा अधिक मनोज्ञ बनाया है, बारही के दिन उपस्थित रहने मे उसे जितना आनन्द आता है, उतना अन्य किसी भी बात मे नही आता। बच्चे के नामकरण-सस्कार के दिन

प्रसूता को जो भेंट दी जाती है उससे अधिक उदात्त एवं पुण्यकारक दान उसके लिए अन्य नही है। अपने मुहल्ले की सब माताओं के भीतर जिसने अपने मातृत्व का साक्षात्कार किया, उसे यदि हम जगन्माता का पद प्रदान करें तो अयोग्य न होगा। इतना मत्सरहीन, इतना सन्तोषपूर्ण जीवन गान्धारी को भी नसीब न हुआ होगा। और इस सब बात का निमित्त सीधी-सादी प्रतीत होने वाली पर अनेक जीवो पर अनेक प्रकार से प्रभाव डालने वाली हमारे हरिजन के मुंह से निकलने वाली "पालणा विणायचा आहे का बाजपालणा ?" यह पुकार ही है न ?

नामर्दों को दुनिया जीने नहीं देती

"नामर्दों को दुनिया जीने नहीं देती" ये शब्द ज्योंही उस कवि के मुह से निकले त्योंही सहस्त्रावधि श्रोतृ-कंठो से भी वे शब्द उतने ही जोर से और जोश से बहिर्गत हुए। हृदय के उल्लास तथा चित्त की तन्मयता ने उस ध्वनि को शीघ्र ही अभिनय में परिणत कर दिया। आवेश मे आकर सैंकडो व्यक्ति अपने-अपने स्थान पर उठ खड़े हुए और हाथ के अभिनय से उक्त पक्ति की भावना की तीव्रता को मुट्ठी तान-तानकर व्यक्त करने लगे। अगर कोई बहरा आदमी वहाँ बैठा होता तो उसे भी उसके अर्थ का ज्ञान हो गया होता। 'जीने नही देती, हा, हां जीने नही देती' इसे टेक बनाकर वह विशाल जनसागर गर्जना कर रहा था। नीचे और ऊपर किये जाने वाले हाथो को देखकर सचमुच ही समुद्र की लहरो का भास होता था। रात्रि के उस प्रशात प्रहर मे झेलम घाटी के कोने-कोने को स्पर्श कर बहने वाला पवन इस ध्वनि को द्रुतगति से किलमर्ग से परे के शत्रु देश मे पहुँचाकर मानो शत्रुओ के

हृदयों को विदीर्ण करने के लिए आकुल हो रहा था। मध्य-रात्रि व्यतीत हो चुकी थी। आकाश में शुक्लपक्ष की तृतीया का चांद लुप्त हो चुका था, मानो उस मजलिस मे प्रतिक्षण अभिनव तेजस्विता से दीप्त होने वाले वातावरण को देखकर उसने अपना मुंह ही छिपा लिया हो। ऊपर नील आकाश मे सैकडो तारे आंखें खोल-खोलकर नीचे की सृष्टि के इस अपूर्व उत्साह का अवलोकन कर रहे थे। चाद इन तारो का साथ छोडकर शायद इसलिए भी चला गया था कि उसे पाकिस्तानी गुप्तचर मानकर लोग कही उस पर हमला न कर बैठें। वह रात उस प्रदेश के इतिहास मे निस्संदेह अभूतपूर्व थी। वे दूरस्थ पर्वत भी जो इतिहास के आरम्भ से ही कालचक्र का भैरव नर्त्तन अपनी आखो से देखते आये हैं, यह समझ कर कि कदाचित् यहाँ कोई नई बात हो रही है, घटनास्थल के और भी समीप आये हुए प्रतीत होते थे। यह मुशायरा काशमीर की उस सुहावनी घाटी मे हो रहा था जहाँ निसर्ग ने अपना सारा सौदर्य खुले हाथो बखेर रखा है। जिस प्रकार मकान मालिक किरायेदारो के काम में आने वाले मकानो का निर्माण करने के पश्चात् स्वयं अपने रहने के लिए एक शानदार मकान बनवाता है, उसी प्रकार सृजनकार्य की समाप्ति पर परिश्रांत विधाता ने सम्भवतः विश्राति के अर्थ इस रम्य घाटी का निर्माण किया होगा।

हा, तो श्रोतागण बार-बार हाथो को नचा-कुदाकर आवेश मे कह रहे थे—"'दुनिया जीने नहीं देती' 'जीने नही देती'" वह कवि भी बार-बार उन्ही पदो को पढ़कर लोगो को प्रेरित कर रहा था। सुदृढ शरीर, शुभ्र खादी के कपडे, सिर पर ठीक बीचो-बीच बाल उड़े हुए और चारो ओर के बाल बढे हुए लम्बे और घुंघराले। उन बालो की रचना को देखकर इच्छा होती थी कि उसकी उपमा उस पर्वत से दी जाय, जिसके शिखर

तो बर्फ से लदे हुए होते है किन्तु जिसके नीचे का भाग लम्बे-लम्बे घने वृक्षो से आच्छन्न होता है। उस कवि का भाल-प्रदेश भव्य और उसका रोब-दाब सहज ही किसी भी व्यक्ति के हृदय पर अपनी छाप बैठा देने वाला था। "समुद्रो को धो डालो", "आकाश को लपेट डालो", "पहाडो को तोड-फोड डालो", "फूलो को लेना है तो काटो को मसल दो।" "काटो को मसल दो" श्रोता लोग इस पक्ति को भी आवेश के साथ दुहराने लगे और एक अजीब मस्ती के साथ झूमने लगे। कृष्ण के बारे में सुना है कि उसने अपनी मुरली की तान से गोपियो को मुग्ध करके उनकी देह की सुधबुध भुला दी थी। वैसा ही कुछ यहा भी था। श्रोताओ मे केवल साधारण कोटि के लोग हो, सो बात नही थी; प्रत्युत उनमे जहा एक ओर ऐसे लोग थे, जो भावनाओ के लिए अपने प्राणो तक की बलि चढाने को तत्पर रहते थे, वहॉ दूसरी ओर ऐसे भी लोग थे जो व्यवहार-प्रवीण एव पहले दर्जे के राजनीतिज्ञ थे। फिर भी उस समय वहॉ शायद ही कोई व्यक्ति ऐसा हो जो उस उत्साह के महासागर मे डूबने से बचा हो। यह प्रभावोत्पादक दृश्य इस बात की साक्षी था कि शब्द की शक्ति कितनी प्रबल होती है।

मुशायरे का यह कार्यक्रम काश्मीर परिषद् के दूसरे दिन का कार्यक्रम समाप्त हो जाने के बाद रखा गया था और आरम्भ मे जिस पक्ति का उल्लेख किया गया है उसके गायक उर्दू के विख्यात कवि 'जोश' थे। उनका नाम यथार्थ ही था। यह किसी सामान्य मुशायरे का दृश्य नही था और मुझे तो इस बात की कल्पना तक नही थी कि मुझे यह मुशायरा देखने को मिलेगा।

१५ सितम्बर को शेरे-काश्मीर शेख अब्दुल्ला ने काश्मीर-परिषद् के लिए आमंत्रण दिया था तथा काश्मीर विश्वविद्यालय के

प्रथम दीक्षान्त समारम्भ के समय उपस्थित रहने की प्रार्थना की थी। मैं इन्कार करने का विचार ही कर रहा था कि इसी बीच पडित जवाहरलाल नेहरू ने पूछा—"काश्मीर देखा है ?" मैने कहा -- नही।" इस पर वह बोले—"चलो।" फलतः मैने भी चलने का निश्चय किया।

कल्हण कविकृत "राजतरगिणी" नामक काव्य मैंने थोडा-सा पढ़ा था। काश्मीर की यात्रा के वर्णन भी मेरी दृष्टि मे आये थे। काश्मीर के सौन्दर्य के सम्बन्ध मे बहुत-सी बाते सुन रखी थी। शेख अब्दुल्ला और काश्मीर के आन्दोलन के बारे मे गत १५ वर्षों से बहुत-कुछ पता था और गत दो वर्षों से तो काश्मीर के सवाल के साथ भारत सरकार के एक मन्त्री के नाते सम्बन्ध अधिक घनिष्ठ हो चुका था। अनेक दृष्टियो से इस योगायोग की अनुकूलता को देखकर आनन्द प्रतीत हुआ और मैं मन-ही-मन काश्मीर के सम्बन्ध मे अनेक प्रकार की कल्पनाए करने लगा। मैने अनुभवी यात्रियो से आवश्यक जानकारी प्राप्त की और २४ सितम्बर की सुबह को एक फौजी हवाई जहाज मे बैठकर श्रीनगर की ओर प्रस्थान किया। पहले पजाब, फिर रावी और फिर जम्मू तथा बानिहाल दर्रे के ऊपर से होता हुआ हमारा विमान तीर की तरह चलता गया। पठानकोट के समीप के प्रचंड पुल और वहा से जम्मू तक की नई सड़क को देखकर मुझे भारत के वास्तु-विशारदो के कर्त्तृत्व के सम्बन्ध मे अभिमान की अनुभूति हो रही थी। नाटककार भले ही नाटक का लेखक हो, किन्तु नाटक का उत्तम रीति से अभिनीत होना तो नट के ऊपर ही अवलंबित रहता है। तथापि दर्शको द्वारा नाटक की प्रशसा होने पर नाटककार को जितना अभिमान करने का अधिकार है, उतना ही अभिमान मुझे भी प्रतीत हुआ। विमान जब बानिहाल पर्वत पर पहुचा तब नीचे के दृश्य की रमणीयता अप्रतिम हो गई। पर्वतों के कटि भाग मे अनेक घुमावदार

रास्ते दीख रहे थे। उन्हे देखकर उस मंदार पर्वत का अनायास स्मरण हो उठता था, जिसको ंथन दराड बनाकर वासुकि नाग की मथन रज्जुका द्वारा देवो और आसुरो ने अमृत प्राप्ति के लिए क्षीरसागर को मथा था और ऐसा प्रतीत होता था कि कदाचित् उसी मंथन मे से यह काश्मीर की नितान्त नयनरम्य सृष्टि निर्मित हुई है। अथवा, काश्मीर की घाटी के संरक्षण के लिए खडा किया गया यह दक्षिण दिक्पाल कहीं भाग न खडा हो इस भीति से उसे रस्सी मे बाध रखा गया हो, ऐसा क्षण-भर को प्रतीत हुआ। क्षण-भर में मन मे ऐसी भी एक रम्य कल्पना आई कि हिन्दू संस्कृति के प्रति आदर बुद्धि उत्पन्न होने के कारण इस नागराज ने कुछ अस्तव्यस्त रूप में ही क्यो न हो, यज्ञोपवीत धारण करके हिन्दू संस्कृति के प्रति अपने अभिभाव को जागरित रखा है।

काश्मीर के आकाश में

हमारा विमान लगभग १२ हजार फुट की ऊंचाई पर से जा रहा था। यात्रा के आरम्भ के क्षणो मे जो उष्णता अनुभव हो रही थी वह अब नही रही थी और पर्याप्त शीत अनुभव होने लगा था। मेरी ही भांति अनेक यात्रियो का जी भी थोडा-सा मिचलाने सा लग गया था। इतने मे नेहरूजी ने यू० डी० कोलोन की शीशी निकालकर उसे सारे जहाज में छिडका। उसकी कुछ बूंदें उन्होने कइयो के रूमालो पर भी छिडकी, जिससे कुछ ताजीदगी महसूस हुई। अब हम काश्मीर की घाटी मे प्रवृष्ट हो चुके थे। नीचे की जमीन सपाट नजर आती थी। ऊंचे-ऊचे वृक्षों से युक्त बडे-बडे उद्यान दृष्टिगत हो रहे थे। हरे-भरे खेत और उनके बीच मे से चक्करदार मार्गों से होकर बहने वाली जलधाराएं दिखाई दे रही थी। सवा नौ बजे के लगभग हमारा हवाई जहाज श्रीनगर से १४ मील की दूरी पर स्थित हवाई जहाज के अड्डे पर उतरा। १९४७ के अक्तूबर महीने के

अन्त में इस स्थान से २ मील के फासले तक पाकिस्तानी लुटेरे आ पहुचे थे। यदि इस हवाई अड्डे पर हमारी भारतीय फौजें दो घण्टे की भी देरी से उतरी होती तो आज यह लेख लिखने का मौका ही न आया होता।

श्रीनगर में भव्य स्वागत

हवाई अड्डे पर उतरते ही स्वागत के लिए आये हुए युवराज कर्णसिंह, काश्मीर के मुख्य अधिकारी एव नागरिक दिखाई दिये। नीचे उतरने पर उन सबसे परिचय कराया गया। परिचय के पश्चात् हम सब की प्रभातफेरी श्रीनगर की दिशा मे चल पड़ी। श्रीनगर के प्रवेश द्वार तक रास्ते मे स्थान-स्थान पर स्वागत-द्वार बने हुए थे। नेहरूजी की जीप के पीछे हमारी गाडी थी और उसमे मेरे सिवाय राजकुमारी तथा गोपाल स्वामी थे। स्वागतार्थ जब लोग हम पर फूल फेकते थे तो फूल के रज के साथ पृथ्वी की रज (धूल) भी हम पर बरस जाती थी। नेपालेश्वर के बारे मे ऐसी प्रसिद्धि है कि यदि वह कीचड़ उठाकर भी अपने माथे पर लगाले तो वह कस्तूरीमय हो जाता है। कुछ ऐसी ही कल्पना मेरे भी मन मे थी। मैं समझता था कि सारा काश्मीर केशरमय होगा अथवा वहा पहुचने पर कम-से-कम वैसी सुगन्ध का अनुभव तो अवश्य ही होगा। पर यह काव्य-कल्पना यहां की वस्तुस्थिति की तुला पर तोलने पर सर्वथा सारहीन सिद्ध हुई। राजकुमारी ने कहा—"यह क्या धूल है?" मैंने कहा—"मध्यम श्रेणी के लोगो के प्रारब्ध में तो यही बदा होता है। यदि हम श्रेष्ठ कोटि के नेता होते तो अग्रभाग मे विराजित रहने से धूल हमारे हिस्से मे न आती या यह तब सम्भव होता जब हम एकदम अन्त मे होते। यद्यपि इस विनोद के कारण धूल को भुला देना सम्भव नही था, तथापि इतनी बात अवश्य हुई कि किसी ने फिर इस विषय पर चर्चा नही की। प्रत्येक प्रवेश द्वार के पास 'हिन्दुस्तान जिदाबाद' 'नेहरू जिंदाबाद' 'शेरे काश्मीर जिदा-

बाद' के नारे लगाये जाते थे। थोडी देर मे हमारा जुलूस नगर के प्रवेश द्वार पर आ पहुचा। झेलम नदी का पुल ही श्रीनगर का प्रवेश द्वार है। सारा श्रीनगर इस नदी के दोनो किनारो पर बसा हुआ है। अर्थात् यो कहिये कि झेलम नदी इस नगर के मध्यभाग मे प्राणवाहिनी की तरह बहती है। सैकडो नौकाएं नदी मे तरंगित हो रही थी। पुल पर से होकर हमने नगर मे प्रवेश किया। यहा स्वागत-द्वार बहुत पास पास बने हुए थे। कढे हुए कपडो और गलीचो ही से सारे द्वार सुसज्जित किये गये थे। दोनो ओर दूकाने सजी हुई थीं। मार्ग लोगो से खचाखच भरा हुआ था। परिषद के स्वयसेवक, काश्मीरी होमगार्डस तथा भारतीय फौज के सिपाही इन्तजाम मे लगे हुए थे। इस नगर मे लगभग पौन घटे तक हमारा जुलूस चलता रहा। थोडी ही देर मे हम 'चश्मेशाही' उद्यान मे पहुचे। यह किंचित् ऊंचाई पर बना हुआ है। यहा के झरने का पानी बहुत प्रसिद्ध है और ऐसा कहा जाता है कि जहागीर बादशाह के जमाने में यहां से पानी के घडे प्रति दिन बादशाह और बेगमो के लिए लाहौर भेजे जाते थे। आज यहां एक अत्यन्त आधुनिक ढंग का अतिथि-गृह बना हुआ है और इसके सामने श्रीनगर की शोभा मे वृद्धि करने वाली डल झील है। यहां हमे जलपान कराया गया।

दीक्षान्त समारम्भ

कुछ समय तक वहां की सुन्दर पुष्पवाटिकाओ का आनन्द लेने के पश्चात् हम दीक्षान्त-समारोह मे सम्मिलित होने के लिए निकले। मैं समझता हू कि खुले मैदान मे होने वाला यह कदाचित् पहला ही दीक्षान्त समारम्भ था। विश्वविद्यालय की स्थापना को अभी एक ही वर्ष हुआ था। वस्तुतः ऐसे काल में, जब कि चारो ओर तोपो की गड़गड़ाहट कान की झिल्लियां फाड़े डालती हो और एक प्रकार का रणसंभ्रम सर्वत्र मचा हुआ

हो, किसी नये विश्वविद्यालय की कल्पना तक हास्यास्पद प्रतीत हुई होती, तथापि अरण्यों, वनो मे से पलायन करते समय जैसे अकबर का जन्म हुआ था अथवा शिबनेरी नामक स्थान पर सर्वत्र उथल-पुथल की दशा मे स्वराज्य संस्थापक शिव प्रभु का जन्म हुआ था उसी प्रकार श्रीनगर के इस विश्वविद्यालय की भी सृष्टि हुई थी। क्रान्ति के काल ही मे क्रान्तिकारक कल्पनाओ का प्रसव होता है। काश्मीर का विश्वविद्यालय वास्तु अथवा आदर्श की दृष्टि से भारत के अन्य विश्वविद्यालयो के सदृश नही है। वह वस्तुतः अभिनव काश्मीर या 'नया काश्मीर'' रूपी आदर्श का पालना है। उसकी कल्पना केवल तीन ही सप्ताहो मे प्रसूत हुई थी। सब प्रकार के आनुसगिक साधनो को जुटाकर एक वर्ष के भीतर यह विश्वविद्यालय इस स्थिति को पहुच गया कि बर्षान्त मे ३०० विद्यार्थी उत्तीर्ण होकर स्नातक बनने के लिए प्रस्तुत हो गये एवं उन्हे उपाधि प्रदान करने के लिए इस समारोह का आयोजन हुआ। एक सुन्दर त्रिभुजाकार शामियाना लगा हुआ था। सामने की हरी घास पर जनता बैठी हुई थी। चारो ओर गगनचुम्बी चिनार के वृक्षों की कतारें बाल-सूर्य के आतप से दर्शको का बचाव कर रही थी। प्रतिष्ठित अतिथियो मे पजाब तथा केन्द्रीय सरकार के कुछ मंत्री भी थे। हमारे पहुँचने तक वहा सीनेटर का जुलूस तैयार हो चुका था। नेहरूजी गाडी से उतरते हुए बोले—"ओह, अपना गाऊन लाना भूल गया" "पर भाषण भूलना तो सम्भव नही," मैंने कहा। पंडितजी ने कहा, "हा यह तो सही है।" हम अपनी जगहो पर बैठ गये और थोड़ी ही देर मे जुलूस भी आ पहुचा। युवराज और नेहरूजी के आगे शेख अब्दुल्ला तथा उपकुलपति थे। उनके पीछे जोडी-जोड़ी मे सीनेटर एव प्रोफेसर लोग थे। इनमे हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध सभी धर्मों के अनुयायी थे। स्नातको मे भी सभी धर्मों के लोग थे। पर स्मरण रहे

कि सब के सिरो का पहरावा एक ही था। सबने किंचित गुलाबी रग के फेंटे बाध रखे थे। काले चोलो और गुलाबी शिरः परिधानो का सुन्दर समन्वय था। युवराज ने भाषण दिया। काश्मीर समस्त जगत् की संस्कृतियो का समन्वय है। वैदिक संस्कृति की गहनता, बौद्ध संस्कृति का नैतिक महत्व एवं इस्लामी सस्कृति का चैतन्य मिलकर काश्मीर की संस्कृति बनती है। एशिया महाद्वीप से आने वाले सभी बड़े-बडे रास्ते काश्मीर मे आकर मिलते हैं। काश्मीर जिस प्रकार प्राचीन काल से चली आने वाली वस्तु-विनिमय का केन्द्रीय पैठ रहा है उसी प्रकार वह सस्कृति-विनिमय की भी पैंठ है। नेहरूजी ने कहा—"भारत का तथा काश्मीर का इन गत दो वर्षों मे जो इतिहास रहा है उसे देखकर मुझे अभिमान होता है। इस प्रदेश मे बुद्धि के विलास और हस्तलाघव का सुन्दर मेल हुआ है। यहा के कला-कौशल ने तथा यहा के साहित्य ने विश्व को आश्चर्य-चकित कर दिया है। यह विश्वविद्यालय दूसरो से भिन्न है। यहा के स्नातक अन्य स्नातको की भाति नही होगे। नवीन काश्मीर के वे शिल्पकार है। नया काश्मीर एक ऐतिहासिक आन्दोलन है और वह भारत तथा समीपवर्ती अन्य देशो के इतिहास को एक प्रेरणा देने वाली वस्तु बनेगा।" पंडितजी के भाषण मे गत स्मृतियो का उल्लेख आया। वर्तमान घटनाओ का ऊहापोह उन्होने किया। भावी इतिहास के रेखाचित्र उन्होने अकित किये। सामने खड़े हुए चिनार के दरख्तो की ऊँचाई के साथ मानो उनका भाषण होड कर रहा था। नेहरूजी प्रवृत्ति से कवि, मनन से तत्त्वज्ञ, तथा विवेक से व्यवहारविद् हैं। अतः उनके भाषण का विमान किसी निर्धारित विमान-स्थल पर ही उतरेगा ऐसा अक्सर नही कहा जा सकता।

जेब की परीक्षा

दीक्षांत समारंभ के पश्चात् पंडितजी को छोड़ हम सब झेलम नदी के तीर पर बने अतिथि-गृह में 'सरकारी अतिथि' के रूप मे पहुँचे। अपरान्ह मे हमे नदी मार्ग से निकलने वाले जुलूस में सम्मिलित होने की सूचना दी गई। दोपहर के भोजन के पश्चात् जुलूस के समय तक क्या किया जाय इसका विचार मै कर ही रहा था कि रक्षामत्री सरदार बल्देवसिंह, उनके भाई, उनकी पत्नी और बच्चे मेरे पास आये और काश्मीर एम्पोरियम की ओर चलने के लिए कहने लगे। वहां जाने का अर्थ अपना सारा बटुआ खाली करना था। पर यह भी सत्य था कि दिल्ली लौटने पर सारी बाल-गोपाल-मंडली हमारे लिए क्या लाये, हमारे लिए क्या लाये यह कहकर पीछे पड़ जाती। अतः अभी मैं सोच ही मे था कि मोटर में बैठ कर काश्मीर एम्पोरियम पहुँच गया। सबसे पहले मैने केशर के बारे मे पूछताछ की। विचारशील वृत्ति के अनुरूप मैंने मध्यम कोटि की केशर देने के लिए कहा। विक्रेता ने कहा—"काश्मीर मे केशर एक ही कोटि का होता है।" उसने केशर दिखाया। जीवन मे पहली बार मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया कि असली केशर कैसी होती है और उसकी सुगन्ध कितनी मनमोहक होती है! ग्राहक लोग मोह मे आकर अधिक केशर खरीद सकें इस विचार से काश्मीर सरकार ने रुपये के पीछे एक आना कमीशन घोषित कर रखा था। हम वहा भिन्न-भिन्न दालानो मे से होकर फिरे। लकड़ी पर खुदाई का काम, कागज का काम, शाल, गलीचे, चमड़े के काम, सर्वत्र कला-कौशल का विकास दिखाई देता था। जेब की सम्पत्ति की समाप्ति तक खरीदारी हुई। व्यवस्थापक ने कहा—"और खरीदना हो तो खरीद लीजिए। पैसो की चिंता न करें, दिल्ली जाकर भेज दीजिएगा।" प्रसंग बड़ा नाजुक था। मेरी ही जैसी अवस्था सरदार बल्देवसिंह की भी

हो गई थी। अन्त मे हम दोनो झपट कर एम्पोरियम से बाहर हो गये और हमारी प्रतिष्ठा तथा जेब की शेप राशि बची रही।

नौका-विहार

ठीक चार बजे हम वहा पहुँचे जहा से नौका-जुलूस निकलने वाला था। तीन नौकाएं सजाई गई थी। पहली मे पडितजी, युवराज और शेख अब्दुल्ला बैठे। नोका खेने वाले सफेद पायजामा, सफेद कोट, सिर पर गुलाबी रंग का फेटा त । तिरगे चप्पू लिए तैयार खडे थे। दूसरी नौका मे मै, राजकुमारी तथा आयंगर बैठे। तीसरी नौका मे सेनापति, रक्षामत्री तथा अन्य फौजी अधिकारी बैठे। हमारे पार्श्व मे पुलिस वालो की नौकाएं थी और चारो तरफ जिधर देखो उधर छोटी-बडी नौकाए ही नौकाएं दृष्टिगत होती थीं। साढे चार बजे का चला हुआ जुलूस सवा छः बजे अपने सकल्पित स्थान पर पहुँचा। इन तीन-चार मील के प्रवास मे गगन नारो से गूज उठा था। पानी पर भी अगणित स्वागत द्वार थे। प्रत्येक विद्यालय और महाविद्यालय के अलग-अलग स्वागत-द्वार खडे किये गये थे। नदी के दोनो किनारो पर खडे हुए श्वेत भवन नर-मुन्डो से निर्मित बुर्ज-से प्रतीत होते थे। काश्मीर सौन्दर्य का निलय है, यह केवल अचेतन सृष्टि ही नही, प्रत्युत चेतन सृष्टि को देखकर भी विदित होता था।

खिड़कियो मे से, छज्जो पर से सैकडो स्त्रियाँ निर्निमेष दृष्टि से जुलूस को निहार रही थी। उनमे से कुछ तो वहाँ अस्तव्यस्त अवस्था मे ही थी। कुछ अपने बच्चो को सुलाते-सुलाते उन्हे उसी अवस्था मे साथ ले आई थी—तो कुछ प्याला भूलकर केवल तश्तरी ही लेकर भाग आई मालूम पड़ती थीं। उन्हे देखकर रघुवंश मे वर्णित अज महाराज के जुलूस की याद हो आई। अज महाराज को देखने आने की गड़बड़ी में 'न बबंध नीवी ससम्भ्रात् सा' वाली बात यहा भी अवश्य हुई होगी

ऐसी एक कल्पना मन का स्पर्श किये बिना न रही। स्थान-स्थान पर स्त्रियों के झुन्ड विद्यमान थे और वे स्थान मुझे तो विकसित-कुसुम कमल-वनो की भाति ही प्रतीत हुए। लगभग सत्तर वर्ष की उम्र के गोपाल स्वामी ने मुझसे पूछा—"दोनो तरफ मोजूद यह दर्शक-समुदाय आपने देखा?" मैंने कहा—"जैसे आपकी नजरो से नही बच सका वैसे मेरी नजरो से भी नही बच सकता।" एक जगह चादर मे 'स्वागतम्' के अक्षरो मे छेद बनाए हुए थे और उनमे केवल सिर बाहर निकाले बच्चे बैठे थे। उसे देखकर लगता था मानो इन कपाल-कमलो से ही 'स्वागतम्' शब्द लिख गया हो। डेढ़ घंटे तक नारो और जयघोषो के साथ हमारा प्रवास चालू रहा। तिरंगे चप्पू एक साथ चलाये जा रहे थे जिससे ऐसा भास होता था मानो साक्षात् अप्सराएं ही झेलम नदी मे जल क्रीडा कर रही हों। "जमीन [illegible] की", "कारखाना मजदूरो का", "राज्य जनता का" इत्यादि अनेक वाक्य स्वागत-द्वारो पर लिखे हुए थे। काश्मीर के ज्ञात इतिहास मे यह तीसरा जुलूस है; पर इतने बड़े पैमाने का पहला ही है, ऐसा लोग कहते थे। झेलम ने अपने जन्मकाल से अब तक अपने वक्षःस्थल को विलोडित करने वाला इतना बड़ा जुलूस नहीं देखा था, इसीलिए उसका हृदय बल्लियो उछल रहा था। इस दृश्य को जी-भर कर देखने के लोभ मे सूर्य भी शीघ्र अस्त नही हो रहा था। उसका यह ताप हमे बडा दुखदायी लग रहा था। पूरा एक घंटा बीत जाने पर भी जुलूस समाप्त होता नही दिखाई दिया। आगे-पीछे, इधर-उधर चारो तरफ नौकाए ही नौकाए नजर आती थी और जिस प्रकार पतंग दीये के ऊपर छूटने की चेष्टा करता है, उसी प्रकार प्रत्येक नौका वाला नेहरूजी की नौका की ओर झपटा पड़ रहा था। "काका, आपको अभी एक घंटा और इसमे बैठना पड़ेगा।" फ़िरोज़ (नेहरू के जामाता) ने कहा। मैंने

कहा—"यह निर्मल-नीरा झेलम, यह चारो ओर की जनता और यह रसमय वातावरण ऐसा ही बना रहने वाला हो तो एक घटा क्यो, युग-भर भी मैं बैठे रहने को तैयार हूँ।" तथापि स्वप्नो की समाप्ति की भांति हमारे इस जुलूस की समाप्ति का काल भी आ गया। सवा छः बजे के करीब हम अपने संकल्पित स्थान पर पहुँच गये। वहा पास के एक छोटे से उद्यान मे हमारी चाय का प्रबन्ध था। गरम-गरम मसालेदार चाय को उदरस्थ कर हम समीप ही मे विद्यमान परिषद्-मंडप मे जा पहुँचे।

विराट् जनसमूह एकत्र था। सामने चिनार के वृक्षो पर बिजली के दीपो की मालाए मनोहर आवृत्तियो मे सजाई गई थी। मंच पर भी बिजली की जगमगाहट थी। अपनी सगठन चातुरी के लिए समस्त काश्मीर से वाहवाही पाने वाले गुलाम मुहम्मद बख्शी का भाषण हुआ, जिसे उन्होने गिने-गिनाये तीन मिनटो मे ही समाप्त किया। वह समय और प्रसंग को पहचान कर तदनुरूप व्यवहार करने मे दक्ष है। अतिथियो की वाहन-व्यवस्था से लेकर भोजन-व्यवस्था तक उनका सारा प्रबन्ध, मुझ जैसे अनेक राजा-महाराजाओ का आतिथ्य स्वीकार किये हुए व्यक्ति को अत्युत्कृष्ट एवं अविस्मरणीय लगा।

काश्मीर का केहरी

शेख अब्दुल्ला के भाषण देने के लिये खडे होते ही "शेरे काश्मीर जिंदाबाद" का इतना प्रचंड घोष हुआ कि आकाशवाणी पर प्रसारित उसकी ध्वनि से कराची शहर भी दहल उठा होगा। शेख अब्दुल्ला काश्मीर के पहाड़ो की भाति ऊँचे, वहा के पाम वृक्षो की भांति इकहरे बदन के तथा समस्त काश्मीर की सौंदर्य-कीर्ति के अनुरूप रूप के हैं। उनकी लगन और उनके तत्वज्ञान मे से अधिक प्रभावशाली कौन है, यह कहना सुगम नही। द्विराष्ट्रवाद के प्रति उनका द्वेष उनके काश्मीर के प्रेम

के जितना ही है। उनकी भाषा स्पष्ट एवं उनके विचार उदात्त हैं। कूट-नीतिज्ञता का आरोप मै तो उन पर नही करूंगा। लोग इतने वक्र स्वभाव से क्यो व्यवहार करते हैं, यह उनके लिए एक पहेली है—ठीक वैसे ही जैसे वह स्वयं इतने सरल स्वभाव से क्यो व्यवहार करते हैं यह उनके मित्रो के लिए एक पहेली है। उनके शत्रुओ के लिये ये दोनो ही बातें एक अनबूझे बुझौवल की भांति है। उनका विगत इतिहास, उनके द्वारा सहन किये गये कष्ट तथा अनेक बार कसौटी की कस पर खरा उतरा हुआ उनका राजकीय शील जो लोग अच्छी तरह जानते हैं वे ही उनकी व्यक्ति-मत्ता को समझ सकते हैं।

हमारी मोटर जब माल रोड पर से गुजर रही थी तो एक पुलिस चौकी के पास गोपाल स्वामी ने मुझे बताया—यही वह स्थान है, जहां शेख अब्दुल्ला को पकड़ने के पश्चात् मेरी मोटर पर बड़े-बड़े पत्थर बरसाये गये थे।" मैने कहा—"और यही वह स्थान है, जहा आज प्रात: आपके ऊपर फूल बरसाये गये, ऐतिहासिक न्याय से और कुरान मे काफिरो के लिए लिखे गये न्याय से तो आप पर पत्थरो की ही वर्षा होनी चाहिए।" गोपाल स्वामी ने कहा—"गिरफ्तारी के बाद जो उपद्रव हुए उनके लिए अब्दुल्ला उत्तरदायी नही है। वह सच्ची अहिसा के अनुयायी हैं।"

अभिप्राय यह कि शेख अब्दुल्ला क्रातिकारी व्यक्ति हैं, किन्तु उनके अन्दर क्रातिकारियो की सी एकांगी वृत्ति नहीं है। वह मुसलमान हैं, किन्तु उनमे कठमुल्लापन नही है। वह आज काश्मीर के नेता है पर जनता के साथ समरस होने का भाव उनसे दूर नहीं हुआ है। अपने भाषण में उन्होने कहा—"हम केवल रक्षा, यातायात और परराष्ट्रीय सम्बन्ध के विषयो के लिए भारत के साथ संलग्न हुए हैं। अन्यथा काश्मीर, सर्वधर्मानुयायियो का काश्मीर, काश्मीरी जनता का काश्मीर, सर्वथा स्वयं

शासित रहेगा। हमारा निर्णय जल्दबाजी मे किंवा लोभवश किया गया निर्णय नही है। पाकिस्तानी सस्कृति का पूरा अनुभव हम ले चुके है। हम भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा के पहरेदार है। निष्ठा हमारा व्रत है। जनता की सेवा हमारा धर्म है। गाधीजी की सीख हमारी मार्गदर्शक है। काश्मीर की पवित्र भूमि पर जबतक एक भी काश्मीरी जीवित है, तबतक हम किसी को आने नही देगे। १६४७ के अक्तूबर मे आक्रमणकारियों के धावा बोलते ही हमारी सरकार हमे छोडकर भाग गई। जनता ने तथा हमारे स्वयसेवकों ने क्षण-भर मे सगठन करके राज्य का कारोबार अपने हाथ मे ले लिया। भारत सरकार ने हमारी प्रार्थना सुनी, भारतीय सेना ने हमारा सरक्षण करके हमे उपकृत किया। जिन हिंदू-मुसलमान शहीदोंने काश्मीर के लिये देह त्याग किया उनकी स्मृति इस झेलम के प्रवाह की तरह अखड रहेगी। आज नया काश्मीर जन्म ग्रहण कर रहा है। उसके उत्कर्ष के लिए हम अपना तन, मन और धन समर्पित कर रहे है।"

अब्दुल्ला के पश्चात् पडित जी ने भाषण किया। आध घटे तक उन्होने काश्मीर से सम्बन्ध रखने वाली घठनाओ का उल्लेख किया। इसके पश्चात् उनकी वाग्-नौका ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के महासमुद्र मे प्रवेश किया। पाकिस्तान को सम्बोधित करते हुए उन्होने धमकी, प्रार्थना, उपदेश, व्यपदेश आदि के क्रम से अपने वक्तव्य का प्रदर्शन किया। उनके भाषण मे अनेक बार "हिन्दुस्तान जिंदाबाद, "पडित नेहरू जिंदाबाद" के नारे बुलन्द किए जाते रहे।

भाषण के बाद अगले दिन का कार्य-क्रम बताया गया और सूचना दी गई कि रात को दस बजे के बाद मुशायरा रखा गया है। परिषद के मडप से लौटते समय नेहरू जी ने मुशायरे मे अवश्य सम्मिलित होने का आग्रह किया। रात को कर्णमहल मे हमारा 'राजकीय' भोजन प्रबन्ध रहा।

राजकीय भोजन प्रबन्ध, हमने इस लिए कहा कि इसमे सम्मिलित होने के आमंत्रण-पत्र छपे हुए थे और भोजन का स्थान राजमहल था। वैसे उस भोजन मे और अन्यत्र कही भी प्राप्त होने वाले भोजन मे कोई अन्तर नही था। उसी जगह नेहरू जी का काश्मीर यात्रा का चित्र-पट भी देखने को मिला। उस चित्र को देखने वालो मे कुछ लामा लोग भी अपने विचित्र वेशभूषा मे नज़र आये।

गुलमर्ग-यात्रा

काश्मीर मे आने के बाद काश्मीर के दर्शनीय स्थानो को देखे बिना जाना असभव था। यो तो समस्त काश्मीर ही अपने सौन्दर्य के लिए लब्ध-प्रतिष्ठित है। उसमें भी श्रीनगर और उसमें गुलमर्ग, शालीमार, निशात तथा अच्छा-बल। जिस प्रकार शाकुंतल के चौथे अक के श्लोक चतुष्टय को पढ लेने से शाकुतल का सार सर्वस्व ग्रहण हो जाता है वैसे ही मैने उक्त स्थानो को देखकर काश्मीर का सारांश ग्रहण करने का निश्चय किया। २५ तारीख की सुबह के ६॥ बजे हम गुलमर्ग की ओर जाने के लिए निकले। श्रीनगर के बाहर वाले मैदान में से होकर मोटर का रास्ता था। इस मैदान से एक मील की दूरी पर सरदार बलदेवसिह ने हमे वह स्थान दिखाया जहा तक शत्रु आ पहुँचा था। वह रास्ता बारामूला की ओर जाता है तथा उसके दोनो तरफ ऊंचे-ऊंचे दरख्त है। कुछ फासला तय करने पर हम दक्षिण की ओर मुडे। रास्ते मे जहाँ कोई गाव मिलता वही हम ठहर जाते और भिन्न-भिन्न लोगो से अनेक प्रकार के प्रश्न पूछते। लगभग डेढ घंटे में हम तगमर्ग पहुचे। वहा से गुलमर्ग की चढ़ाई शुरू होती है। मेरा मन उस चार मील के रास्ते को घोडे पर सवार होकर तय करने का था। परन्तु हमारे लिए जीप गाड़ियां तैयार थी। जिस रास्ते पर चाहे उस पर

जिस प्रदेश में से चाहे उसमे से और जिस चढ़ाई या उतार पर चाहें उस पर से जाने वाला यह जीप-वाहन भी एक विलक्षण वस्तु है। अहमदनगर की ओर एक कहावत है कि "प्याज जैसा व्यंजन नही, मानभाव जैसी पत्नी नही, और गदहे जैसा वाहन नही।" प्याज कच्ची पक्की दोनो हालतो मे, हर अंग से उपयोग मे आती हैं। मानभाव की पत्नी के लिए चोली, चूडी तथा तेल का खच नही और गदहे के लिए उससे भरपूर काम लेने के बाद भी चारे की चिन्ता करने की आवश्यकता नही, किसी घूरे पर उसे छोड दिया जाय तो उतना ही उसके लिए पर्याप्त हो जाता है। इस कहावत मे मै गदहे के स्थान मे जीप शब्द रख देना ठीक समझता हूं क्योंकि इस वाहन के चलाने के लिए किसी रास्ते की ही जरूरत नही रहती। अधर मे वह नही चल सकता, इतनी ही कमी उसमें रह गई है। बिलकुल दम फुला देने वाली काठियावाड़ी पगडी की भाति घुमावदार रास्तो वाली वह चार मील की चढ़ाई हमारी जीप ने लगभग १५ मिनट में पूरी कर दी।

गुलमर्ग दस हज़ार फुट की ऊंचाई पर है। एक द्रोण की तरह अध-मील व्यास का एक गोलाकृति प्रदेश है तथा चारो ओर से पर्वतो से घिरा हुआ है। घने जगल मे से आते समय तो सूर्य का दर्शन भी दुर्लभ हो जाता था। इस द्रोण भाग मे अल्हाद मारने वाली ठण्डी हवा बह रही थी। थोडी-थोडी दूर पर लकडी की कुछ टूटी-फूटी-सी झोपडिया नजर आती थी। कभी-कदास कोई आदमी आता-जाता दीख जाता था। हमारे साथ का कैप्टन हमे परली ओर मिलिटरी की झोपडी के पास ले गया। वहा से एक मील के फासले पर किलमर्ग का दर्रा था और उसके ऊपर चनाब नदी की घाटी थी। किलमर्ग की ओर जाने की इच्छा थी पर जीप का वहाँ तक जाना सम्भव नही था। टट्टू पर जाने से समय पर

लौटना कठिन हो जाता; अतः विचार स्थगित करना पड़ा। वहाँ पर रहने वाले सैनिको ने हमारी आव-भगत की। बलदेवसिंह ने बडी आत्मीयता से उनसे कुशल-मगल पूछा। आक्रमणकारियो ने वहा के जिस 'निड्ड-होटल' को तोड-फोड़ डाला था वह हमें दिखाया गया। जिस नृत्य-गृह मे सौदर्य-लतिकाए नाचा करती थी वहा उसके दग्ध अंगो को देखकर शैतान के नंगे नाच का स्पष्ट भान हो रहा था। रेसकोर्स को नष्ट कर दिया गया था। जो कुछ वे ले जा सकते थे सब उठा ले गए थे, जो बड़े-बड़े गलीचे वे पूरे-के-पूरे नही ले जा सकते थे उन्हे टुकडे-टुकडे करके ले गये। दवाखाने की बोतलो मे तेजाब भरा हुआ था जिसे उन्होंने सिर और मुंह पर तेल समझकर मल लिया था। फलतः उनके चेहरे विरूप हो गये थे, ऐसा हमे बताया गया था। बारामूला और गुलमर्ग की लूट का सामान वे लोग लगभग साढ़े चार सौ ट्रकों मे भर कर ले गये थे। यदि वे इस लूट मे अपना समय खर्च न कर देते तो आज काश्मीर का सवाल हिन्दुस्तान के लिए तो समाप्त हो चुका होता। इन लोगो ने अत्याचार करते समय उम्र नही देखी, जाति नही देखी, धर्म नही देखा। उन्हे पशु कहना बेचारे पशुओं का भी अपमान करना है।

शाही शेरवानी

आततायियो ने शेख अब्दुल्ला के दाहिने हाथ "शेरबानी" को पकड़ कर बारामूला गांव के चौराहे पर खडा करके अनेक प्रकार की यातनाओं से पीडित करके मार डाला। उनसे बार-बार कहा गया था—"अगर तू मुंह से अब्दुल्ला मुर्दाबाद" कह दे तो हम छोड देगे।" पर आखिर दम तक उन्होंने वह नही माना। आज शेरबानी की स्मृति काश्मीर के लिए एक प्रेरणा मन्त्र बन गई है। आततायियो की नृशसापूर्ण कथाएं सुनकर मन को शात रख सकना असम्भव हो जाता है। वहां के सैनिको ने हमे भिन्न-

भिन्न क्षेत्रो की घटनाओ से भी परिचित कराया। वहां के प्रमुख अधिकारी एक सिख थे जो पूना के न्यू इंग्लिश स्कूल के विद्यार्थी भी रह चुके थे। जीप का ड्राइवर मद्रासी था। जमादार मेजर कोल्हापुर के शिवाजी राव भोसिले नाम के सज्जन थे। एक और अधिकारी राजपूत थे। वे लोग विविध प्रातो से आये हुए थे, फिर भी देश-प्रेम से प्रेरित होकर वे उसकी रक्षार्थ सगठित होकर काम करते थे। उनका उत्साह दुर्दमनीय था। वे उस 'क्षण' की प्रतीक्षा मे थे, जब वे दुश्मन को पूरी तरह नेस्तो-नाबूद करने में सफल हो सकेंगे। कडाके के जाडे मे और बर्फीली जगहो पर उन्होने जो पौरुष प्रदर्शित किया है उसका वर्णन उनके प्रति लिखे गये ऐतिहासिक स्तुति-गीतो द्वारा ही किया जाना चाहिए। हमने उनके साथ चाय पी और सबसे हाथ मिलाकर ़म वहा से विदा हुए, यद्यपि उस रम्य प्रदेश को छोड़ने की इच्छा नही हो रही थी। इतनी शाति और इतने सौदर्य के सानिध्य के कारण मन मे एक प्रकार का दिव्य वातावरण उत्पन्न हो रहा था। सचमुच तपश्चरण के लिए वह स्थान अत्यन्त अनुकूल था। पर तप करने देता कौन है ? अनेक मोह और अनेक प्रलोभनो से पूर्ण इस आधुनिक सृष्टि मे प्रल्हाद बनने जाये तो कदाचित विश्वामित्र ही बन जाना पडे। तात्पर्य यह कि कुछ विलक्षण से विचार उस स्थान को देखकर मन मे आते थे। उनका स्मरण करने से एक प्रकार की ताजगी अनुभव होती है पर उन विचारो को अक्षर रूप प्रदान करना मेरी कला के क्षेत्र से बाहर की वस्तु है। उस काल की मनःस्थिति को साहित्य की चित्र गुफाओं मे लाना मेरे लिए क्या, साक्षात् शारदा के लिए भी, असम्भव है। आत्मा जिस प्रकार शब्दातीत है, तद्वत् उस समय का आनन्द भी शब्दातीत है।

निशात और शालीमार की छबि

कुछ ही क्षणो मे हम तंगमर्ग के समीप आये और जीप मे से उतरकर

मोटर मे बैठ श्रीनगर लौट आये। दोपहर को हमने जगद्विख्यात निशात और शालीमार देखा। जहागीर बादशाह द्वारा बनाये गये ये उद्यान चार शताब्दियो के बाद आज भी उतने ही सौंदर्ययुक्त और आह्लाददायक हैं। रस की तो यहा पराकाष्ठा है। विलासी वृत्ति का सम्पूर्ण ग्रंथ यहा देखने को मिल जाता है। भूमिगत स्वर्ग कहकर उनका जो वर्णन किया गया है वह अधूरा पडता है। वे पुष्प-वाटिकाएं, वे हरियालिया, फव्वारे मे से उद्भूत होते हुए वे नीर तुषार, निशात उद्यान के सामने फैला हुआ विस्तीर्ण डल सरोवर, उसके पृष्ठभाग मे वह दडायमान उत्तुंग पर्वत, यह सब कुछ देखने पर यदि किसी को क्षण-भर के लिए काल का विस्मरण होजाय तो इसमे आश्चर्य ही क्या? विलास-प्रवीण मुगलो की कलाकृतियो एवं शिल्प चमत्कृतियो के समक्ष आधुनिक काल की सारी कलाकृतियां गद्य जैसी निष्प्रभ प्रतीत होती है। उस स्थान पर खडे होकर सामने के हिमाच्छादित शिखरो वाले पर्वतो को देखने से ऐसा प्रतीत होता था मानो किसी चन्दनपंक चर्चित भाल वाले ऋषि को देख रहे हो। डल सरोवर मे नानाविध आकृतियो वाली नौकायें इधर-उधर फिर रही थी। क्या था वह दृश्य! इतिहास ने यदि उलटी गति ले ली होती तो काश्मीर का यह सारा पार्थिव सौदर्य समाप्त होगया होता!

साझ का समय हुआ जा रहा था। अतः वहां से लगभग ३० मील की दूरी पर स्थित 'अच्छाबल' उद्यान मे जाना सम्भव नहीं था। एता-वता हम अपने आवासस्थान पर लौट आये। रास्ते भर मे हमने देखा कि इधर-उधर वृक्षो पर घोषणा वाक्य तथा चित्र टंगे हुए थे। यहा की सर-कार की इस प्रचार-प्रणाली को देखने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह मनुष्य स्वभाव की नाडियो को अच्छी तरह परखना जानती है। पाकिस्तान के निदर्शक चित्र कुछ ऐसे बने हुए थे कि उन्हे देखकर पुरुष गुस्से के

मारे तमतमा उठे, स्त्रियां घृणा के मारे नाक-भौ सिकोड़ ले और छोटे बच्चे डर जाये। शेरे काश्मीर के चित्र तो हजारो की सख्या मे लगे हुए थे। 'काश्मीर एक है' 'हिंदू-मुसलमान एक है' 'काश्मीर उन्ही का है', इत्यादि वाक्य लिखकर उनके अनुरूप ही भित्ति-पत्रो की योजना की गई थी।

नाड़ी की पहिचान

भारतीय सेना द्वारा आक्रमणकारियो के मार भगाये जाने के बाद काश्मीर के नेताओ ने जिस सगठन से और जिस द्रुतगति ने जनता के मन पर अधिकार प्राप्त कर लिया था, उसका इतिहास सचमुच हम सबके लिए एक प्रकाशस्तम्भ की तरह है। एक सर्वजन सुलभ लिपि का निर्माण करके उसका प्रचार आरम्भ किया है। काश्मीर राज्य के सार्वजनिक यातायात का राष्ट्रीयकरण करके किराया तथा गमना गमन का समय नियमित कर दिया गया है। जो धन्धे अशात वातावरण के कारण अस्तव्यस्त हो गये थे उनमे स्थिरता लाकर बड़े पैमाने के विक्रय और वितरण के काम को सरकार ने अपने हाथ मे ले लिया है। यह प्रदेश इतना सुन्दर और इतना समृद्ध है, तो भी यहां की-सी गरीबी अन्यत्र ढूंढे नही मिलेगी। यह आत्म-विरोध वहा के नेताओ के चित्त को बेचन किये रखता था।

काश्मीर के मुसलमान

काश्मीर की घाटी मे लगभग ६६ प्रतिशत जनता मुसलमान है और धार्मिक कठमुल्लापन भी उसमे खूब है, इतना कि हिन्दुओ के हाथ का भोजन भी वे लोग स्वीकार नही करते। भावना के वशवर्ती होकर वह जनता पाकिस्तान के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित कर सकती है, इस बात को वहां के दीर्घदर्शी नेता अच्छी तरह समझते है। इस धार्मिक भावना पर अंकुश रखने के लिए लोगो के चित्त पर यह प्रभाव डालना आवश्यक हो जाता है कि वे ऐहिक सुविधाओ और स्वार्थों की ओर अधिक ध्यान

दें तथा इस बात को भली प्रकार जान जाय कि केवल धार्मिक एकता में ही जीवन का समस्त हित निहित नहीं है। काश्मीर के बहुसंख्यक मुसलमान निवासियो के मन मे इस्लाम के प्रति पूर्ण अनुराग की भावना है; तथापि पाकिस्तानी इस्लामी संस्कृति क्या वस्तु है उसका भी अनुभव उन्हे भली प्रकार हो चुका है। पाकिस्तान से आये हुए लुटेरे उनकी स्त्रियो को अपहरण करके ले गये थे। पुरुषो और बच्चो को खुले आम कत्ल करके उन्होने अपना इस्लामी बंधुत्व अच्छी तरह प्रकट कर दिया था। खून, कत्ल और लूटमार के द्वारा उन्होने सारे जग के समक्ष यह प्रकट कर दिया था कि काश्मीर के प्रति उनके मन मे कितना अनुराग है। इन सब कारणो से भारत के प्रति प्रेम की अपेक्षा पाकिस्तान के प्रति तिरस्कार की भावना ही आज की काश्मीरी जनता के मन मे अधिक काम कर रही है।

आर्थिक पुनर्निर्माण

इन अभावात्मक भावनाओं के आधार पर ही संतोष मानकर बैठने से काम नहीं चल सकेगा। इसलिए काश्मीरी नेताओ ने आर्थिक कार्यक्रम द्वारा इस दृष्टिकोण को अधिक स्थायी स्वरूप देने का यत्न आरम्भ किया है। लगभग ९० फीसदी से ज्यादा जनता खेती तथा तत्सम्बद्ध व्यवसायो पर जीवन निर्वाह करती है। जमीदारी-प्रथा के कारण बेचारे खेतिहरो को जो धूप, हवा, सर्दी और बर्फ मे रात-दिन कष्ट उठाकर काम करते हैं, खेती की उपज की सिर्फ डंठलें ही मिल पाती है। परमेश्वरी न्याय से नही प्रत्युत मानव-निर्मित कानूनो और प्रथाओ से यह सारी धांधली चल रही है। आज इसमे क्रातिकारी परिवर्तन लाया गया है। जमीदारो को अहिंसात्मक लुटेरा करार देकर तदनुरूप शस्त्रो से उन्हे भी काश्मीर के आर्थिक क्षेत्र से मार कर भगा दिया गया है। खेती की कुल (बट्ट) पैदावार का तीन बटा चार भाग हल जोतने वाले का रखा गया है और बाकी का एक

चौथाई भाग प्रतिक्षण क्षयाभिमुख जमींदारों की तथा प्रतिक्षण लोकप्रियता के आकाश में उदयाभिमुख सरकार की सुविधा के लिए रखा गया है। खेतिहरों मे अपनी जमीन की सेवा आस्था-पूर्वक करने की लगन बढ़ गई है, क्योंकि वे जान गये हैं कि जो भी पैदावार होगी वह उनकी अपनी ही होगी। इस जानकारी से उनकी मनोवाटिका भी दिन-ब-दिन पुष्पित होती चली जा रही है। इस वर्ष की फसल पिछले वर्षों से खूब बढ़कर होगी, ऐसा लोगों का अनुमान है। काश्मीर की इस स्थिति में तथा पाकिस्तानी जमींदारी प्रथा की स्थिति में क्या विरोध है यह चतुर खेतिहर के ध्यान में आये बिना नही रहता। इसके सिवाय आकाशवाणी, पत्रकों, भित्तिपत्रकों, व्याख्यानों और उत्सवों के द्वारा भी नवीन काश्मीर के नवीन व पुरातन जीवन का यथार्थ चित्र काश्मीरी जनता के समक्ष प्रभावकारी रूप मे प्रस्तुत किया जाता है। पुनश्च, काश्मीरी संस्कृति की सर्व धर्म सामन्वयवादिता, उसकी अलौकिकता, उसके आकर्षण आदि की भी छाप काश्मीरी जनता के हृदयों पर बिठाने का प्रयत्न किया जाता है। यहां की सरकार की प्रचार प्रणाली सर्वथा अभिनव है। उसके ऊपर थोथी-सी छाया साम्यवादी प्रणाली की पडी हुई है, ऐसा कहें तो वह वस्तुस्थितिविसंगत बात न होगी।

बच्चों के छोटे-मोटे खेलों के द्वारा भी वर्ग-विग्रह को बिंबित किया जाता है। रस्साकशी के खेल में एक ओर राजा लोग, नवाब, जमींदार, पूंजीपति, व्यापारी, दलाल आदि को एकत्र करके उनका नेतृत्व पंडित और मौलाना लोगों को दिया जाता है और दूसरी ओर टांगे वालों, मोटर वालों, खेतिहरों एवं मजदूरों की पार्टी बनाकर उनका नेतृत्व वर्गीय कल्पना से विरहित विद्यार्थियों को दिया जाता है। इस प्रकार का एक खेल हमे दिखाया गया था। शिक्षा में, क्रीड़ा-क्षेत्र में, उद्योग मे, व्यापार मे, खेती

मे, चरागाहों में, सर्वत्र इसी प्रकार का वातावरण उत्पन्न किया जाता है। यह है 'नया काश्मीर' का रूप ! सवत्र पुनर्निर्माण एवं पुनरुत्थान ही की आशा उदित है तथा उस दिशा मे पर्याप्त द्रुतगति से प्रयाण किया जा रहा है।

नया दृष्टि-बिन्दु

यहां की स्त्रिया शनैः शनैः पर्दा छोड़ती जा रही हैं। 'बेबी शो' के अवसर पर हजारों मुसलमान स्त्रिया पर्दे की प्रथा का परित्याग करके उपस्थित थी। सौंदर्य के साथ यदि स्वच्छता एव शुचिता का भी ध्यान रखा जाय तो अच्छा हो। छठे छमाही कभी एकाध दफा नहा लेने की प्रथा अभी काश्मीरियो मे से हटी नहीं है। फिर भी आज काश्मीर मे पुरातन जीवन के किले की दीवारें धड़ाधड़ गिरती चली जा रही हैं। अनेक युगों से अंधकार वाले कोनो मे नया प्रकाश फैलता जा रहा है। मदालसा शनैः शनैः क्रियाशील होती जा रही है। शनैः शनैः वहां के स्त्री-पुरुष अपने कंधो पर पड़े हुए अभिनव काश्मीर के निर्माण के उत्तर-दायित्व को पहचान रहे हैं। परलोक मे धर्माचरण सब प्रकार के फल को प्राप्त करायेगा इस उधार कल्पना की अपेक्षा इस लोक में प्रस्थापित राज्यसंस्था हमारे जीवनों को अधिक सुखी बना सकेगी, यह नकद लेन-देन की कल्पना स्वीकार करने की व्यवहार-दक्षता लोगो मे आती जा रही है। कुछ दिन पहले दिल्ली मे एक काश्मीरी व्यापारी माल बेचने के लिए आया था। उससे सारी परिस्थिति के बारे मे सवाल करने पर उसने तत्काल उत्तर दिया कि 'रोजी कमाना है तो हिन्दुस्तान से मिलकर रहो और रोजा रखना है तो पाकिस्तान का साथ दो।' इस वाक्य का आशय स्पष्ट ही है। काश्मीर की यच्चयावत् प्रजा में सामान्यतया आज यही विचारधारा काम कर रही है।

आध्यात्मिक पृष्ठभूमि

नये काश्मीर की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि सर्व-धर्म-समन्वय की है तथा आधिभौतिक कार्यक्षेत्र साम्यवादी विचारो से ओतप्रोत हो गया है। उनका मार्ग निश्चय का है। आशा उनके साथ है। पीछे मुडकर देखने की आदत उनमे न होने के कारण आगे के मार्ग को वे स्पष्ट देख रहे हैं। शेख साहब तथा उनके सहकारी सकटो मे से गुजरने के कारण आज एक जबरदस्त संगठन के काम में लगे हुए हैं। शासन-सत्ता को हथियाने की भावना से प्रेरित राजनीति वहा नहीं है; अतः स्वार्थ प्रेरित नेतागिरी के पनपने के लिए वहा बहुत कम मौका है। वयक्तिक स्वार्थ के लिए देश के भाग्य के साथ खिलवाड करने वाले किवा अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए देश की विडम्बना एवं अंगविच्छेद करवाने वाले महाभागी अभी वहां नजर नही आते। यहां के मुसलमान कहते हैं कि हम पहले काश्मीरी हैं और आखीर में भी काश्मीरी ही हैं।

इस अभिनव काश्मीर के आन्दोलन का परिणाम भारत पर तथा पाकिस्तान पर क्या होता है यह अभी देखना है। पर इस नये धर्म मे कार्य की प्रबल आकाक्षा एव स्वार्थहीनता का अंश तो स्पष्ट है। सार्व-जनिक मतदान में काश्मीर किसे स्वीकार करेगा इसके बारे में आज तो किसी प्रकार का संदेह नही। जिस धर्म निरपेक्ष वातावरण में काश्मीर की राजनीति प्रगति कर रही है वह एक उन्नत वातावरण है। उसकी उत्कटता अनुकरणीय है। भारतीय मुसलमान इसी भावना से भारत में भी बरताव रखेंगे तो अभिनव भारत भी जगत् में एक आदर्श वस्तु सिद्ध होगा।

इन दो दिनो मे खेतिहरो से लेकर बडे अधिकारियों तक, कुली से लेकर साहूकार पर्यंत अनेक लोगो से मिलने-जुलने के मौके आये। अनेक के मनों का आभास भी हमें मिला। पौधा शनैः शनः ऊपर की ओर बढ़

रहा है और उसी गति से वह जड भी पकडता जा रहा है। फिर भी यदि एक कुशल माली बनकर इस पौधे की यथोचित निगरानी न की गई तो कौन कह सकता है कि क्या होगा और क्या न होगा !

मुशायरा

मेरे मन मे इस प्रकार की आशंका भले ही हो पर काश्मीरी जनता का आत्मविश्वास कितना है इसका थोडा सा अनुभव रात्रि के मुशायरे मे प्राप्त हुआ। १० बजे के करीब जब हम मुशायरे मे शामिल होने के लिए मंडप में प्रविष्ट हुए तो "जलाने का वक्त आया रे, जलाने का वक्त आया रे" ये शब्द उच्च स्वर में गाये जा रहे थे। रंगमच पर मध्य भाग मे अध्यक्ष 'डितजी बैठे हुए थे। उनके चारो ओर कविगण बैठे हुए थे। मुझ जैसे अरसिक व्यक्ति को पात्रता न होते हुए भी पंडितजी के समीप का स्थान प्रदान किया गया। "युगों से हमें दारिद्रय में रखने वाली जमींदारी की प्रथा को 'जलाने का वक्त आया रे', हमें अज्ञान में रखने वाले जगत् की संस्कृति से अलिप्त रखने वाले मुल्ला-मौलवियों के धर्म को झेलम मे 'बहाने का वक्त आया रे', स्वार्थी साहूकार एवं अत्याचारी राजसत्ता के पर्वतो से परिवेष्ठित अपने जीवन को मुक्त करने के लिए 'इन पहाडों को रगड़ने का वक्त आया रे," इस प्रकार यह शायर गाता जा रहा था। कुछ देर तक तो मुझे अच्छा लगा, पर जब कुछ जी उकताने लगा तो मैने अपने पास बैठे हुए खुर्शीदलाल से कहा—"अब तो सोने का वक्त आया रे।"

एक के बाद एक शायर ध्वनि-विस्तारक के समीप आता। कोई पहाडी बोली मे कोई काश्मीरी भाषा में, कोई फारसी मे और कोई उर्दू में शायरी करके सुनाता था। पर उन सब की शायरी का विषय एक ही था और वह था रात्रि का दृश्य। "देखो, देखो, आज 'नये काश्मीर' का

जन्म देखने के लिए यह चांद अपना मलिन मुख झेलम के स्फटिकनिर्मल पात्र मे धोकर ऊपर आ रहा है। ये युगो के साक्षी तारे इसके पालने पर के झालर बने हुए हैं। क्या कहते हो, तुम्हे इस घटना का अर्थ बोध नहीं होता ? जरा अपने अतःकरण के कपाट खोलकर देखो। तुम्हे विरोध करने के कारण पश्चाताप होता हो तो आओ हमारा 'शेरे काश्मीर' उदार बुद्धि है। सद्वृत्ति पूर्वक रहो। लड़ाई झगड़े से किस का हित हुआ है ? यदि तुम यो रास्ते पर नहीं आओगे तो फिर "शमशीर से काम लेना होगा।" शायर ने ऊचे स्वर मे शेर पढा। हजारो श्रोताओ ने चिल्लाकर कहा, "शमशीर से काम लेना होगा।" शेख साहब बोले—"हम तो अहिंसा के मानने वाले हैं," पर श्रोतागण दुहराते ही रहे, "हा हा, शमशीर से काम लेना होगा।"

जगन्नाथ आजाद ने एक नजम पढ़ी। १५ अगस्त १९४७ के दिन 'किस पर क्या गुजरी' इसका बहुत ही मार्मिक एव काव्यमय वर्णन उस मे था। सादिक़ ने जब कहा—"न हम खुदा के बंदे यार बंदे हैं वतन के" तो अब्दुल्ला साहब मोलवी सईद से बोले, देखिये, देखिये, ये क्या काफिरो की तरह कह रहे हैं। थोड़ी ही देर मे श्रोतृ-वृन्द की ओर से "जोश, जोश" की माग की गई। ये महानुभाव पडित जी के पास ही बैठे हुए थे और क्षण-क्षण पर पान के बीड़े मु ह मे डालते जा रहे थे। सर्प-यज्ञ में जिस प्रकार एक के बाद दूसरा सर्प यज्ञकुण्ड मे पडता जाता था उसी प्रकार एक के बाद एक पान का बीड़ा उनके मुख-कुण्ड मे पड़ता जा रहा था। जब वे ध्वनिक्षेपक के नजदीक आये और अपनी नजम कहने लगे तब इस 'तांबूल-वीटिका यज्ञ' की सफलता की प्रतीति मुझे हुई। मैं यह उम्मीद लगाये बैठा था कि इतने पान खा डालने के बाद 'रगीनी'

की बहार आने के कारण 'लैला-मजनू' का काव्य निकलेगा। पर इस वातावरण में "साजन और बालम" के काव्य के लिये गुंजाइश नहीं थी। 'रंगीनी' की जगह 'रगदार' वृत्ति ही उनके काव्य से स्फुटित हो रही थी। ऐसा लगता था मानो काश्मीर का अभिमान, निश्चय और उत्साह सन्देह रूप में हमारे सामने खड़ा हो। काश्मीर का वर्णन करते समय काश्मीर का स्वर्ग-निर्माण कर चुकने के बाद जब उन्होंने कहा कि अब स्वर्ग बचा नही, तब मैंने देखा सारा श्रोतृ-समुदाय फणिधर की भांति डोल रहा था और उनके काव्य के साथ पूर्ण तन्मय हो रहा था।

भारत के कंठाभरण की मणि

काश्मीर के स्वातंत्र्य का अभिरक्षण कोई सुगम वस्तु नही है। काश्मीर आज भारत के कंठाभरण की मणि है। काश्मीर भारत का भाल-प्रदेश है। यहां भाग्य-हीनता के लिये स्थान नही, शक्ति-हीन के लिये तो कतई नही। "नामर्दों को दुनिया जीने नही देती" ज्यो ही ये शब्द जोश के मुंह से निकले सारे श्रोताओं की अवस्था वैसी ही हो गई जैसी कि हम ने इस लेख के आरम्भ में बताई है। ऐसा लगता था मानों कोई नाग अपना फन उठाकर फुफकार रहा हो। अशक्त प्राणी को इस जग में सुख नहीं ('टूबी वीक इज मिजरेबल') मिल्टन के इन शब्दो का मुझे उस समय स्मरण हो आया। उस खलभलाकर उमड़े हुए जनसागर को देखकर अभिनव काश्मीर अपने नव प्राप्त स्वातंत्र्य को किन निगाहों से देखता है और उसके लिये वह क्या कुछ करने के लिये तैयार है, इसका ठीक-ठीक परिज्ञान मुझे उस समय हुआ।

मुशायरा खत्म हो गया तथापि "जीने नहीं देती, जीने नहीं देती" ये शब्द मेरे कानो में गूंजते रहे। अगले दिन विमान में बैठ कर हम

जब दिल्ली की ओर आ रहे थे, मुझे थोडी-सी ऊंघ आ गई। 'जीने नहीं देती, जीने नही देती' ऐसा कहते हुए ही मैं जागा। तब फ़िरोज़ ने पूछा "काका क्या हुआ ?" मैंने कहा—"नामर्दों को दुनिया जीने नहीं देती, अजी जीने नहीं देती।"